दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

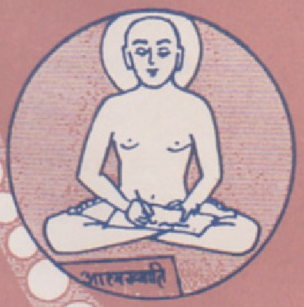

कोटि ग्रंथ को सार यही है,
ये ही जिनवाणी उचरो ॥
'दौल' ध्याय अपने आतम को,
मुक्ति-रमा तब वेग वरो ॥

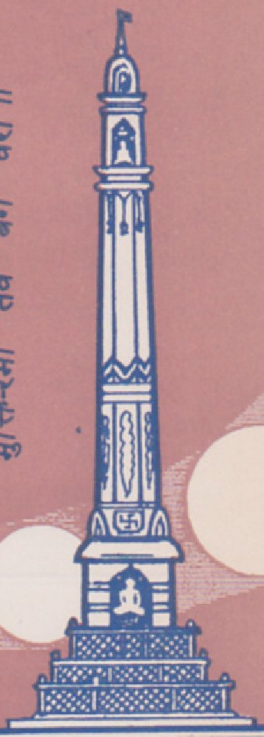

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३३ : अंक ७ [३९१] जनवरी, १९७८

आत्मधर्म [३९१]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ धन-धन जैनी साधु
२ संस्कार तो डाल
३ संपादकीय : एक और इंटरव्यू
४ धन्य वह मुनिदशा
५ एक आत्मा को जानना ही... [समयसार प्रवचन]
६ उसे परमात्मा कहते हैं [नियमसार प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र

ज्ञान भिन्न, राग भिन्न

गन्ने का रस और छिलके यदि एकमेक होते तो वे कभी अलग न होते। अतः रस और छिलके अलग ही थे, इसलिये अलग हो जाते हैं। उसीप्रकार ज्ञान और राग भिन्न ही हैं, इसलिये वे अलग हो जाते हैं। एकमेक हों तो ज्ञान से राग भिन्न हो ही नहीं सकता। पर राग अलग होकर चला जाता है और ज्ञान कायम रहता है; अतः वे भिन्न ही होने से भिन्न हुए हैं।

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

धन-धन जैनी साधु अबाधित,
तत्त्वज्ञान विलासी हो॥टेक॥
दर्शन-बोधमई निज मूरति,
जिनकों अपनी भासी हो।
त्यागी अन्य समस्त वस्तु में,
अहंबुद्धि दुखदासी हो॥धन०॥
जिन अशुभोपयोग की परनति,
सत्तासहित विनासी हो।
होय कदाच शुभोपयोग तो,
तहँ भी रहत उदासी हो॥धन०॥
छेदत ते अनादि दुखदायक,
दुबिधि बंध की फाँसी हो।
मोह-क्षोभ रहित जिन परनति,
विमल मयंक-कला सी हो॥धन०॥
विषय चाह दव दाह खुजावन,
साम्य सुधारस रासी हो।
'भागचंद' ज्ञानानंदी पद,
साधत सदा हुलासी हो॥धन०॥

संस्कार तो डाल!

अरे जीव! तुझे ऐसे महान आत्महितकारी शास्त्रों को पढ़ने का समय भी नहीं मिलता? एक बार ध्यानपूर्वक इनका स्वाध्याय कर, विचार कर और अंतर में आत्महित के संस्कार तो डाल!

राग से भिन्न अद्भुत आत्मतत्त्व का घंटे-दो घंटे विचार-मंथन करना चाहिये। राग से भिन्नता के ऐसे प्रयत्न के साथ तुझे उत्कृष्ट पुण्य भी बँधेगा—जिससे तू स्वर्ग में या उत्तम मनुष्यभव में जाएगा और वहाँ पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त करेगा, क्योंकि इस भव में 'मैं राग से भिन्न चिदानंद भगवान आत्मा हूँ'—ऐसे संस्कार डाले हैं।

जैसे मिट्टी के नये बर्तन में पानी की बूँदें छिड़कने से वह उन्हें सोख लेता है, परंतु बाद में वे ही बूँदें एकत्रित होकर बढ़ते-बढ़ते बाहर आती हैं; उसीप्रकार 'मैं त्रिकाल राग से भिन्न ज्ञानस्वभावी हूँ, पुण्य-पाप के परिणाम से मेरा कुछ भी संबंध नहीं है'—इसप्रकार संस्कार डालने पर इस भव में कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो सके, परंतु अगले भव में सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त होगा।

जिसके अंतर में वीतरागमार्ग के संस्कार पड़ेंगे उसे उत्कृष्ट पुण्य बँधने से वह नरकादि दुर्गतियों में कैसे जायेगा? वह तो जहाँ साक्षात् भगवान का योग है ऐसे महाविदेहादि में उत्तम मनुष्य भव प्राप्त करेगा और पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन अवश्य प्राप्त करेगा।

इसलिए शास्त्र-स्वाध्याय और विचार-मनन के द्वारा आत्महित के संस्कार तो अवश्य डालने चाहिये।

—पूज्य स्वामीजी

सम्पादकीय

मुनिराज तो चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं

[एक और इंटरव्यू : पूज्य कानजी स्वामी से]

'स्वामीजी मुनि विरोधी हैं, नया पंथ चला रहे हैं'—आदि न जाने कितनी बे-सिर-पैर की अफवाहें आजकल बुद्धिपूर्वक उड़ाई जा रही हैं।

उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचें, इस पवित्र भावना से संपादक आत्मधर्म द्वारा दिनांक २७-१२-७७ को सोनगढ़ में स्वामीजी से लिया गया यह चौथा इंटरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

'मुनिराज तो चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं'—उक्त शब्द पूज्य स्वामीजी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि कुछ लोग कहते हैं कि आप मुनिराजों को नहीं मानते, उनका अपमान करते हैं, उनकी निंदा करते हैं।

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—'अपमान तो हम किसी का भी नहीं करते, निंदा भी किसी की नहीं करते; फिर मुनिराजों की निंदा करने का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है। शुद्धोपयोग की भूमिका में झूलते हुए नग्नदिगम्बर परम पूज्य मुनिराज तो एक प्रकार से चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं। उनकी चरणरज अपने मस्तक पर धारण कर कौन दिगम्बर जैन अपने को भाग्यशाली नहीं मानेगा?'

कहते-कहते जब वे भावमग्न हो गये तब मैंने उनकी मग्नता को भंग करते हुए कहा—'आजकल कुछ लोगों द्वारा यह प्रचार बहुत जोरों से किया जा रहा है कि आप मुनि विरोधी हैं।'

तब वे अत्यंत गंभीर हो गये और बोले—''मुनिराज तो संवर और निर्जरा के मूर्तिमान स्वरूप हैं। मुनिविरोध का अर्थ है संवर और निर्जरा तत्त्व की अस्वीकृति। जो सात तत्त्वों को

भी न माने वह कैसा जैनी ? हमें तो उनके स्मरण मात्र से रोमांच हो आता है। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' के रूप में हम तो सभी त्रिकालवर्ती मुनिराजों को प्रतिदिन सैकड़ों बार नमस्कार करते हैं।''

'आजकल यह भी कहा जा रहा है कि आप पार्श्वनाथ भगवान की फणवाली मूर्ति को नहीं पूजते, पूज्य नहीं मानते और उन्हें पानी में विसर्जित करने की प्रेरणा देते हैं—क्या यह बात सच है ?'

'भाई ! क्या बात करते हो ? यहाँ सोनगढ़ के मूल मंदिर में ही भगवान पार्श्वनाथ की फणवाली मूर्ति[१] है। वह लगभग छत्तीस वर्ष से विराजमान है और तब तक रहेगी जब तक मंदिर है। सभी प्रतिदिन अन्य सभी मूर्तियों के समान उसकी भी पूजन-वंदना करते हैं।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर में पार्श्वनाथ भगवान की फणवाली मूर्ति की हमारे हाथ से प्रतिष्ठा हुई है। उस पर अंकन्यास विधि हमने अपने हाथ से की है। उस प्रतिष्ठा की फिल्म भी बनी थी। वह वहाँ सुरक्षित होगी। तुम उसे आज भी देख सकते हो।

बाहुबली की बेलवाली मूर्ति के बारे में भी यही बात है। हम तीन-तीन बार बाहुबली की यात्रा के लिये गये हैं। वहाँ उनकी पूजन-वंदना की है।

फणवाली पार्श्वनाथ की और बेलवाली बाहुबली की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ अन्य प्रतिष्ठित मूर्तियों के समान ही पूज्य हैं।'

'यदि ऐसी बात है तो फिर आप उन्हें विसर्जन करने की प्रेरणा क्यों देते हैं ?'

'कौन देता है ? कब दी ? तुम भी गजब करते हो ? हमने तो आज तक किसी को कुछ नहीं कहा। विसर्जन की बात तो हम सोच भी नहीं सकते।'

'सुना है, कहीं विसर्जित कर दी गयी है ?'

'नहीं, हमने तो नहीं सुना। ऐसा महान पाप कोई जैनी तो नहीं कर सकता। अधिक हम क्या कहें ?'

'समाज वैसे ही अनेक पंथों में बंटा हुआ है—जैसे तेरापंथ, बीसपंथ, तारणपंथ, गुमानपंथ आदि। फिर आप और क्यों नया पंथ चला रहे हैं ?'

---

१. इस मूर्ति का चित्र इसी अंक में कवर पृष्ठ ३ पर दिया गया है।

''हमने तो कोई नया पंथ नहीं चलाया और न चला रहे हैं। हमारा तो पंथ एक ही है और वह है आचार्य कुन्दकुन्द का 'सत्यपंथ निर्ग्रंथ दिगम्बर'। जो कुन्दकुन्दाम्नाय का मूल दिगम्बर मार्ग है, हमने तो उसी को बुद्धिपूर्वक स्वीकार किया है, उसी पर चल रहे हैं। हमने कोई नया मार्ग नहीं पकड़ा। अनादिनिधन जो मूल मार्ग है, वही हमारा मार्ग है। जिस पथ पर परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचन्द्र, भूतबलि, पुष्पदंत, नेमिचंद्र चले—पंडित बनारसीदासजी और टोडरमलजी चले; उसी पर हम चल रहे हैं, वही हमारा पंथ है।''

'आपकी प्रासुक पूजनपद्धति, क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि को नहीं पूजना, मात्र जल से अभिषेक करना आदि क्रियायें तो शुद्ध तेरापंथ आम्नाय से मिलती हैं?'

'अरे भाई! तुम कहाँ पंथ की बात ले बैठे? ये सब तो मूल दिगम्बर धर्म की बातें हैं। ये सब तो भूमिकानुसार सद्गृहस्थ के होती ही हैं, मूल बात तो आत्मा के अनुभव की है। जब तक आत्मा नहीं जाना तब तक सब क्रियाकाण्ड अंक बिना बिन्दी के समान हैं।'

'आत्मा के अनुभव की बात तो मूल है ही, पर सामाजिक शांति भी तो आवश्यक है?'

'क्यों नहीं? पर सामाजिक शांति का उपाय भी आध्यात्मिक वातावरण ही है। यदि समाज में पूर्णत: आध्यात्मिक वातावरण रहे तो फिर अशांति होगी ही नहीं।'

''यह बात तो पूर्णत: सत्य है कि आपके द्वारा दिगम्बर जैन समाज को एक आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त हुआ है। सौराष्ट्र में जहाँ दिगम्बर जिनमंदिरों के दर्शन दुर्लभ थे, वहाँ आज पद-पद पर विद्यमान विशाल दिगम्बर जिनमंदिरों के दर्शन कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। आपने लाखों नये दिगम्बर जैन बनाये हैं। लाखों जन्मजात दिगम्बरों को भी दिगम्बर धर्म का मूल तत्त्व बताकर सन्मार्ग में लगाया है। चारों अनुयोगों के दिगम्बर जिनशास्त्रों को बीस लाख से अधिक प्रतियों में प्रकाशित कराके अत्यल्प मूल्य में घर-घर पहुँचा दिया है। सैकड़ों आत्मार्थी विद्वान तैयार कर दिये हैं।

यद्यपि समाज का एक बहुत बड़ा भाग आपके इस महान उपकार को स्वीकार करता है, आपके प्रति अत्यंत वात्सल्य एवं बहुमान का भाव रखता है; तथापि कुछ लोग न जाने क्यों आपका विरोध करते हैं और अत्यंत शांतिप्रिय धार्मिक समाज का वातावरण अशांत करने पर तुले हुए हैं। क्या इस संबंध में आप कुछ कहना चाहेंगे?''

''नहीं, इस संबंध में हमें कुछ भी नहीं कहना है। हम क्या कहें, जिसकी जैसी होनहार होगी उसका वैसा ही परिणमन होगा।

हमने किसी का कुछ नहीं किया है। जिन्हें सन्मार्ग प्राप्त हुआ है, वह उनको उनकी योग्यता-पात्रता से प्राप्त हुआ है, उसमें हमने कुछ नहीं किया है। तथा जिन्हें द्वेष जगता है, वह भी उनकी अपनी स्वयं की योग्यता से है, उसके कारण भी हम नहीं हैं। हम तो अपनी परिणति के कर्ता-धर्ता हैं, दूसरों की परिणति के नहीं। कोई भी व्यक्ति द्वेष या घृणा का पात्र नहीं है। सबसे समता भाव रखना ही ज्ञानी का काम है।

रही तत्त्वप्रचार की बात। सो यह तत्त्वप्रचार का काल पका है। सबकी होनहार अच्छी है—सो हो रहा है। इसमें भी हमारा क्या? हमारी तो यही भावना है सब भगवान महावीर एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों के बताये सन्मार्ग पर लगें और अपनी अनंत निधि को प्राप्त कर अनंत सुखी हों।''

'वर्तमान वातावरण के संदर्भ में आत्मार्थी बंधुओं एवं दिगम्बर जैन समाज को क्या आप कोई आदेश या संदेश देना चाहेंगे? यदि आपका कोई आदेश या संदेश या मार्गदर्शन समाज को प्राप्त हो जाये तो बड़ा उपकार होगा।'

''भाई! हम तो किसी को कोई आदेश देते ही नहीं, धर्म मार्ग में आदेश का क्या काम? रही बात संदेश की सो हमारा तो सदा ही और सभी को एक ही संदेश है कि अनुकूल-प्रतिकूल समस्त जगत पर से दृष्टि हटाकर एकमात्र ज्ञायकस्वभावी आत्मा की ओर दृष्टि ले जावो, उसी का अनुभव करो, उसी में जम जावो, उसी में रम जावो—यही एकमात्र सुख-शांति प्राप्त करने का अमोघ उपाय है।

यह दुनिया तो ऐसे ही चलती रहेगी—कभी कुछ, कभी कुछ। इसकी ओर देखते रहोगे तो अमूल्य मनुष्यभव यों ही चला जायेगा और फिर पता ही न चलेगा कि चौरासी लाख योनियों में कहा गये?

अच्छा-बुरा वातावरण तो तात्कालिक चीज़ है। समय पर सब स्वयं ठीक हो जाता है। इसकी अधिक चिंता करने की आवश्यकता नहीं। सबको अपना स्वाध्याय, अध्ययन-मनन-चिंतन-शांति से करते रहना चाहिये।''

''पहले भी धार्मिक व सामाजिक परिस्थितियों पर आपके द्वारा व्यक्त विचारों को जानकर धार्मिक समाज को बहुत शांति व शक्ति मिली थी। इन विचारों को भी मैं आत्मार्थी बंधुओं व धार्मिक समाज तक आत्मधर्म के माध्यम से पहुँचा दूँगा। इससे समाज को शांत व स्वाध्यायरत रहने में मार्गदर्शन प्राप्त होगा, शक्ति प्राप्त होगी।'

'तुम्हारी बात तुम जानो' कहते हुए गुरुदेव स्वाध्यायरत हो गये और मैं भी उनके प्रति अत्यंत आभार व्यक्त करते हुए नमस्कार कर चल दिया।

पच्चीस वर्ष पहले

साधक-संतों की धुन

आत्मा की रमणता की धुन में अतीन्द्रिय आनंद का उपभोग करते हुए.... सहजानंद का अनुभव करते हुए.... जैसी सिद्ध भगवान की दशा है वैसी दशा का अनुभव करते हुए मुनि चले आते हैं.... साधक-संत आत्मा के आनंद-रस में लीन रहते हैं। आत्मस्थिरता में कैसे वृद्धि हो उसी की उन्हें धुन है। आहार क्यों नहीं मिलता उसकी उन्हें किंचित् धुन नहीं है।

साधकों के हृदय की कल्पना बाह्य से नहीं की जा सकती।

[आत्मधर्म वर्ष ८, अंक ९४, माघ वी० नि० सं० २४७९]

धन्य वह मुनिदशा

जहाँ-जहाँ जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होती है और गुरुदेव श्री कानजी स्वामी पधारते हैं, वहाँ-वहाँ भगवान के दीक्षा कल्याणक के अवसर पर दीक्षा वन में स्वामीजी का उक्त प्रसंग पर अत्यंत वैराग्य-बोधक प्रवचन होता है—जिसके माध्यम से चारित्र की महिमा एवं उसे धारण करने की भावना जागृत होती है। आज से बारह वर्ष पूर्व फरवरी, १९६६ ई० सन् के आत्मधर्म में प्रकाशित ऐसे ही प्रवचन का एक अंश—यहाँ दिया जा रहा है।

तीर्थंकर आज चारित्रदशा प्रगट करके मुनि हुए। धन्य है वह चारित्रदशा! इंद्र व चक्रवर्ती भी उसके धारक के चरणों में अपना मस्तक झुकाते हैं, सम्यग्दृष्टि उसकी भावना भाते हैं; इस दशा की क्या बात! धन्य है मोक्ष के राजमार्गी उन मुनिवरों को। भवदु:ख से जिसको मुक्त होना हो उसको ऐसी मुनिदशा पहचान के प्रगट करनी ही होगी।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते हुए भी वीतरागी चारित्रदशा के बिना मुक्ति नहीं। मुनिवर आत्मरस में लीन होकर निर्विकल्प आनंद का पान करते हैं। जैसे पूर्णिमा का चंद्र समुद्र को उछालता है, वैसे चैतन्य के ध्यान के द्वारा मुनिराज भीतर के आनंद समुद्र को उछालते हैं। उस आनंद के अनुभव के पास इंद्र के वैभव की तो क्या बात—तीन लोक का वैभव भी अत्यंत तुच्छ है।

वनवासी दिगम्बर संत श्री पद्मनंदीस्वामी कहते हैं कि हे नाथ! आपने केवलज्ञान निधि प्रगट करके चैतन्य का अपार अचिंत्य निधान हमको प्रगट दिखाया; तो अब ऐसा कौन जीव है जो इस चैतन्यनिधान के सामने इंद्रासन को भी तृणवत् समझकर दीक्षित न हो? भीतर की नि:शंकता से चैतन्य वीणा के तार झनझनाकर धर्मात्मा के हृदय में से रणकार उठती है कि मैं तो सदैव मेरे ज्ञान व आनंदरस से भरपूर एक हूँ, यही मेरी अनादि की टेक है; मोह मेरे स्वरूप में नहीं, शुद्ध चेतना का स्वरूप ही मेरा रूप है। पहले ऐसे आत्मभाव करके बाद में जब उसमें लीनता होती है, तब ही मुनिदशा होती है। इस मुनिदशा की महिमा अपार है।

मुनिवरों की परिणति एकदम अंतरस्वरूप में ढली हुई है। इससे जगत के प्रति उनको

अजीव औदासीन्य है। तीर्थंकर जब मुनि होकर के नग्नरूप से वन में ध्यान में खड़े होंगे—उस प्रसंग का दृश्य कितना वीतरागता प्रेरक होगा? पुराणों में उसका अद्भुत वर्णन आता है। सिंह व हिरण जैसे जंगल के पशु भी आश्चर्य से मुनिराज के सामने एकतार होकर देखते रहते हैं और उनकी शांत छाया में एकत्रित होकर बैठते हैं। भगवान तो अपने ध्यान में मग्न हैं, अंतर की आनंदधारा में लवलीन हैं। ऐसी चारित्रदशा, यह कोई असिधारा नहीं, यह तो आनंद की धारा है; बाहर से देखनेवाले कायर जीवों को वह असिधारा जैसी लगती है, किंतु अंतर में तो आनंद की ही धारा है। यदि चारित्रदशा में आनंद की धारा न हो व दुःख हो तो कौन उसको अंगीकार करेगा? चारित्र तो स्वरूप में स्थिरता है, और स्वरूप की स्थिरता में आनंद का अनुभव है। सम्यग्दर्शन के बिना ऐसी चारित्रदशा नहीं होती और ऐसी चारित्रदशा के बिना मुक्ति नहीं होती।

सिद्धपद के साक्षात् साधक तो चारित्र धारक मुनिराज हैं। उस चारित्रदशा में कषायें अत्यंत क्षीण हो जाती हैं। चैतन्य के आनंद का अनुभव होते ही बाह्य विषयों के प्रति सहज वैराग्य हो जाता है, क्योंकि परिणति का प्रवाह भीतर की ओर ढला हुआ होने से बाह्य विषयों की ओर से वह संकुचित हो जाता है। मुनि की ऐसी सहज अंतर परिणति को अज्ञानी बाह्य से नहीं पहचान सकता।

अहो! धन्य यह मुनिदशा!! मुनिश्री कहते हैं कि हम तो अपने चिदानंदस्वभाव में झूलनेवाले हैं; इस संसार के भोग के लिये हम नहीं अवतरे, हम तो अब हमारे आत्मस्वभाव में जाते हैं। अब तो हमारे स्वरूप में लीन होने का प्रसंग आया है। अंतर के हमारे आनंदकन्द स्वभाव की श्रद्धासहित उसमें रमणता करने के लिये हम जागे, इस भाव में अब भंग होनेवाला नहीं। अनंत तीर्थंकर जिस पावन पथ पर चले उसी पथ के चलनेवाले हम हैं।

तीर्थंकर भगवान को आत्मज्ञान तो जन्म से ही होता है। और वैराग्य होने पर वे भावना भाते हैं कि मेरी चारित्रदशा पूरी न हुई और राग बाकी रह गया, इसी से यह अवतार हुआ। अब उस राग को छेद करके, चारित्रदशा पूर्ण करके इसी भव में मेरी मुक्तदशा प्रगट करूँगा। संसार के भोग के लिये मेरा अवतार नहीं; किंतु आत्मा के मोक्ष के लिये मेरा अवतार है, मैं भगवान होने के लिये अवतरित हुआ हूँ। यह भव, तन व भोगों से उदासीन होकर असंसारी, अशरीरी व

अभोगी—ऐसे अतीन्द्रिय आत्मस्वभाव में लीन होकर के जंगल में चैतन्य के आनंद की मस्ती में झूलने के लिये मेरा अवतार है। इसप्रकार संसार से विरक्त हो भगवान आत्मिक आनंद के अनुभव में झुके।

धन्य है उनका अवतार! नमस्कार हो ऐसे महामुनिवरों को!!

हम सबको भी ऐसी मुनिदशा की भावना करनी चाहिये।

सफल हो धन्य-धन्य वा घड़ी
जब ऐसी अति निरमल होसी परम दशा हमरी॥

समयसार प्रवचन

एक आत्मा को जानना ही भूतार्थ है

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज 'समयसार' पर परमपूज्य आचार्य अमृतचंद्र ने 'आत्मख्याति' नामक अत्यंत महत्त्वपूर्ण टीका संस्कृत भाषा में लिखी है। १३वीं गाथा पर आठवें कलश के पश्चात् लिखी गयी टीका पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

मूल पाठ में तो नवतत्त्व की बात है परंतु अमृतचंद्र आचार्य विशेष बात कहते हैं।

जैसे नवतत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ है; उसीप्रकार एकरूप निर्मल स्वभाव से प्रकाशमान आत्मा को जानने के उपाय जो प्रमाण-नय-निक्षेप हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं—और उनके द्वारा एक आत्मा को ही जानना भूतार्थ है। रागमिश्रित ज्ञान के भेद भी निश्चय से एकत्व में अभूतार्थ हैं, क्योंकि वस्तु का निश्चय करने के विकल्प तो एक के अनुभव में छूट जाते हैं।

आत्मा को जानने में दया-दानादि शुभभावों को निमित्त नहीं कहा। प्रमाण, नय और

निक्षेप आत्मा को जानने में निमित्तरूप उपाय हैं, वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं। स्वभावसन्मुख होने के पहिले आत्मा को समझने के लिये प्रमाण-नय-निक्षेपरूप शुभविकल्प का व्यवहार आये बिना नहीं रहता, किंतु आत्मा के एकत्व के अनुभव के समय वे विकल्प छूट जाते हैं; इसलिये वे अभूतार्थ है, आत्मा के लिये सहायक नहीं हैं। एकत्वरूप प्रकाशमान आत्मा को पकड़े तब तो प्रमाण-नय आदि के विकल्पों को निमित्त कहा जाता है।

त्रिकाली अंश और वर्तमान अंश दोनों को जानना प्रमाण है, एक-एक अंश को जानना नय है, नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव निक्षेप के भेद हैं; इसप्रकार प्रमाण-नय-निक्षेप के विचार आते हैं। किंतु उनसे अभेद में नहीं आया जाता इसलिये वे अभूतार्थ हैं और उनमें एक आत्मा ही भूतार्थ है, क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाण आदि अनेक भेदरूप होते हैं।

कोई कहता है कि इतनी सूक्ष्म बातों को जानने से क्या लाभ है ? एकांत में ध्यान करने से राग-द्वेष छूट जावेंगे।

उससे ज्ञानी कहते हैं कि आत्मस्वभाव की यथार्थ प्रतीति किये बिना राग-द्वेष दूर नहीं हो सकते, उल्टी मूढ़ता बढ़ जावेगी। इसप्रकार तो वृक्ष के भी ध्यान है और पशु को भी बाह्य परिग्रह का त्याग है, परंतु आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझे बिना सच्चा ध्यान या त्याग नहीं हो सकता।

प्रमाण दो प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

परोक्षज्ञान भी अपनी योग्यता से होता है, उसमें इंद्रिय और मन निमित्तमात्र हैं। इंद्रियाँ और मन हैं इसलिये ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। अपनी ज्ञानपर्याय अपने से होती है—उसमें प्रकाश, इंद्रियाँ, मन आदि तो निमित्त हैं। जिसे निमित्त-नैमित्तिक की स्वतंत्रता की खबर नहीं उसका प्रमाण का व्यवहारज्ञान भी सच्चा नहीं है, परोक्षप्रमाण की स्वतंत्रता माने उसे निमित्त की खबर होनी चाहिये। इंद्रिय, मन, प्रकाश, उपदेश आदि के निमित्त से परोक्षज्ञान प्रवर्तित होता है।

जिसमें इंद्रिय आदि निमित्त की अपेक्षा नहीं वह प्रत्यक्षज्ञान है। आत्मा के आश्रय से केवलज्ञान प्रकट होता है।

ज्ञान पाँच प्रकार का है—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान। मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं। अवधि और मन:पर्ययज्ञान विकल-प्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल-प्रत्यक्ष है। इस तरह दो प्रकार का प्रमाण है। जो जीव पाँच भेद को नहीं मानते अथवा इन्हें पराधीन मानते हैं, वे तो स्थूल भूल में हैं।

सम्यग्दर्शन होने के पहिले प्रमाण के भेदों का विचार आता है, वह पुण्य बंध का कारण है, केवलज्ञानी को कुछ विचार करना नहीं रहता। निचली दशावाला विचार करता है कि अहो! आत्मा पर में रुक जाता है तो ज्ञान में कमी रह जाती है, परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय करने से तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला केवलज्ञान प्रकट होता है; ऐसा रागमिश्रित विचार पुण्य है। ऐसे राग का भी अभाव करने से अंदर में स्थिरता करने से धर्म होता है।

प्रमाता अर्थात् जाननेवाला आत्मा, प्रमाण अर्थात् ज्ञान की पाँच पर्याय, प्रमेय अर्थात् ज्ञान में जाननेयोग्य पदार्थ; ये भेद व्यवहारनय से भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं। श्रुतज्ञान का विषय परोक्ष है। ऐसे विचार न आवें उसके तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। जिसे व्यवहारज्ञान की खबर नहीं उसमें धर्म की योग्यता भी नहीं है।

ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय इनका अस्तित्व है; ये अवस्तु नहीं हैं। वेदांत के समान सर्वथा एकांत नहीं है। मेरी मति-श्रुत-ज्ञानपर्याय मुझसे होती है, इंद्रियों और मन से नहीं; उसीप्रकार अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान की पर्याय मुझसे प्रकट होती है—ऐसे भेदरूप विचार व्यवहार से यथार्थ हैं, परंतु एक जीव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं। अभेद में भेद नहीं, एकाकार अभेद स्वभाव में ढलने पर प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय आदि के भेद नष्ट हो जाते हैं।

यहाँ चैतन्य का नाटक बताते हैं। नवतत्त्व के नाटक में एक चैतन्य राजा मुख्य है। अनादिकाल से आत्मा नवतत्त्व के भेदों में छिपा हुआ है, उस त्रिकाल एकरूप आत्मतत्त्व की बात समयसार में बताते हैं।

धर्मी जीव को मति, श्रुत आदि के विचार आते हैं—उन्हें गौण करके एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं। आत्मा में ऐसे भेद नहीं, एकरूप चिदानंद के अनुभव के समय वे भेद झूठे हैं।

जब जीवों की तैयारी शुरु होती है, तब परम सत्य सुनने को मिलता है, किंतु उसके शुभराग में न रुक कर अपूर्व पुरुषार्थ करना चाहिये जो कि अपनी भीतरी तैयारी से होता है। आचार्यदेव ने सर्व शास्त्रों का रहस्य ऐसी अद्‌भुत संकलना से संक्षेप में क्रमशः उपस्थित किया है कि जो यथार्थ पात्रता से समझता है वह पीछे नहीं हटता। ज्ञान, ज्ञेय और निमित्त इत्यादि जो कहा गया है, उसे जानकर यदि जीव स्वतंत्र स्वभाव में बल लगाये तो विकल्प टूटकर स्वानुभव से निर्मल अंश प्रकट हो और स्थिरता में बढ़ते-बढ़ते पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञान परमात्मदशा प्रकट हो।

सम्यक्त्व प्राप्त करने से पूर्व नवतत्त्वों और प्रमाण का ज्ञान तो होता ही है। कोई विस्तार से जाने या कोई संक्षेप में जाने, किंतु स्वरूप के आँगनरूप चित्तशुद्धि का व्यवहार आये बिना नहीं रहता। पहले नवतत्त्व के भेद जानकर, भेद का लक्ष छोड़कर, भूतार्थ एक स्वभाव का आश्रय करने की रीति बतलायी थी। यहाँ वही बात दूसरी रीति से बतलाते हैं कि प्रमाण-नय-निक्षेप आत्मा को जानने का उपाय है, इसलिये रागमिश्रित विचार द्वारा पहले आत्मा का प्रमाणरूप यथार्थ निर्णय करना चाहिये।

पहले प्रमाण के प्रकार कहे जा चुके हैं। अब नय का स्वरूप बताते हैं।

ज्ञान के पाँच भेद हैं। उसमें श्रुतज्ञान के अंश को नय कहते हैं। मतिज्ञान का विषय वर्तमान है, अतः उसमें नय नहीं हैं। अवधि-मन-पर्यय का विषय रूपी है, अतः उसमें भी नय नहीं है। केवलज्ञान परिपूर्ण है, अतः उसमें भी नय नहीं होते। श्रुतज्ञान ही त्रिकाल व वर्तमान दोनों को विषय करता है, उसमें नय होते हैं। नय उपयोगात्मक ज्ञान है।

नय दो प्रकार के हैं—द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। इनमें से जो द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु में द्रव्य का मुख्यतया अनुभव कराये वह द्रव्यार्थिकनय है और पर्याय का मुख्यतया अनुभव कराये वह पर्यायार्थिकनय है।

वस्तु, द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। कोई भी वस्तु एकांत द्रव्यरूप या एकांत पर्यायरूप नहीं है। सामान्य द्रव्य को माने और पर्याय को न माने वह मिथ्यादृष्टि है। तथा पर्याय को माने और सामान्य द्रव्य को न माने वह भी मिथ्यादृष्टि है। वस्तु सामान्य और विशेष स्वरूप है। उसमें

एकरूप ध्रुव सामान्य स्वभाव को जाने वह द्रव्यार्थिकनय है। जिसका प्रयोजन द्रव्य है, उस ज्ञान को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। उसीप्रकार पर्याय को जाननेवाले ज्ञान को पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

माल खरीदते समय उसके वजन और भाव का निर्णय करते हैं। यह निर्णय किये बिना माल नहीं खरीदते। उसीप्रकार आत्मा द्रव्य-पर्यायस्वरूप है, उसके भाव का निर्णय करना चाहिये। और माल तोलकर वजन का निर्णय करने के समान प्रमाण-नय से स्वरूप का निर्णय करना चाहिये। अनुभव के पहले द्रव्य और पर्याय का भाव क्या है ? यह निर्णय करना चाहिये।

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। अर्थ माने द्रव्य-गुण-पर्याय और तत्त्व माने भाव। तत्त्व और अर्थ दोनों के स्वरूप का प्रमाण-नय-निक्षेप से निर्णय करने पर आत्मा का अनुभव होता है।

यद्यपि जीव चित्तशुद्धि के आंगन में अनंत बार आया है, किंतु इसे लांघकर एकरूप स्वभाव का लक्ष्य कभी नहीं किया। इसलिये निर्विकल्प स्वभाव को पहचान कर वस्तु की महिमा को जानकर पूर्ण की दृष्टि करना चाहिये। जब यथार्थ स्वलक्ष्य के बल से निर्विकल्प शांति के अनुभवरूप एक अंतरंग एकाग्रता होती है, तब सम्यग्दर्शन की निर्मल अवस्था प्रकट होती है और भ्रांति का नाश होता है।

'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कहा है कि प्रत्येक द्रव्य पूर्व पर्याययुक्त कारणभाव से वर्तता है और उत्तर पर्याययुक्त कार्यरूप परिणमता है। यदि पर के कारण उत्पाद-व्यय माने जायें तो उत्पाद-व्यय सत् नहीं रहते, द्रव्य स्वयं विकारी या अविकारीरूप परिणमता है। वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। यदि पर के कारण पर्याय हो तो स्वतंत्र वस्तु सिद्ध नहीं होती।

यहाँ चित्तशुद्धि की बात चल रही है। सामान्य-विशेष की स्वतंत्रता की बात चल रही है। अभी तो रागमिश्रित विचार चल रहा है। यदि पर से विशेष (पर्याय) होना माने तो उसका व्यवहार भी सच्चा नहीं। कर्म के कारण मिथ्यात्व होता है, धन के कारण राग होता है, भगवान की प्रतिमा से पुण्य होता है—ऐसा माननेवाले ने पर्यायरहित आत्मा माना जबकि वैसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। जिसे विशेष अंश का व्यवहारज्ञान भी नहीं उसमें सम्यग्दर्शन की पात्रता भी नहीं है।

यहाँ आत्मा के अधिगम के व्यवहार उपाय बताते हैं। व्रत, तप, यात्रा आदि सम्यग्ज्ञान के उपाय नहीं हैं। प्रमाण, नय, और निक्षेप को व्यवहार उपाय कहा है। परंतु ऐसा व्यवहार कब होता है? जब प्रमाण के भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद आत्मा का लक्ष्य करे तब प्रमाण को व्यवहार कहा जाता है। जिसके व्यवहारज्ञान का भी ठिकाना नहीं उसमें धर्म की पात्रता भी नहीं है।

प्रत्येक समय द्रव्य स्वयं विशेष अंशरूप परिणमता है। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कालद्रव्य के अधिकार में कहा है कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय को स्व वर्तना है, उसमें कालद्रव्य निमित्त मात्र है।

सामान्य स्वभाव को द्रव्यार्थिकनय जानता है, और विशेष अंश को पर्यायार्थिकनय जानता है। नित्य अंश मेरा है, और अनित्य अंश भी मेरा है—व्यवहार से ऐसे भेदरूप विचार होते हैं। भेदरूप विचार खरगोश के सींग के समान सर्वथा अभावरूप नहीं हैं। धर्म की शुरुआत के पहिले ऐसे विचार आते हैं। जिसे ऐसे विचारों की योग्यता नहीं उसे धर्म नहीं होता। व्रतादि तो सम्यग्दर्शन के निमित्त भी नहीं हैं। अभेदस्वरूप में भेद का विचार करके भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद का लक्ष्य करे तो भेदरूप विचार को सम्यग्दर्शन में निमित्त कहते हैं। जो जीव द्रव्य और पर्याय का विचार ही नहीं करता, उसे आत्मा का अनुभव कैसे होगा? अर्थात् नहीं होगा।

आत्मा का विचार करना पुण्य परिणाम है। ऐसे नय के विचार भेद से अनुभव करने पर भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं। तथा द्रव्य और पर्याय दोनों में आलिंगन नहीं किया हुआ ऐसे शुद्ध वस्तुमात्र जीव-स्वभाव का अनुभव करने पर नयों के भेद अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

[शेष अगले अंक में]

उसे परमात्मा कहते हैं

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की सातवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा॥७॥

जो नि:शेष दोषों से रहित और केवलज्ञानादि परम वैभव से संयुक्त हैं, वे परमात्मा कहे जाते हैं; अन्य कोई परमात्मा नहीं।

[गतांक से आगे]

पहले जो अठारह दोष कहे, उन दोषों से तथा मोहजनित समस्त दोषों से भगवान रहित हैं। सर्वज्ञत्व और पूर्णानंद प्रकट हो गया है, इस अपेक्षा से सर्व दोषों का नाश किया है—ऐसा कहा; यद्यपि योग के कम्पनादि विकार अभी मौजूद हैं, किंतु उनको यहाँ नहीं गिना है, क्योंकि यह अरहंतदशा का वर्णन है।

परमात्मा कैसे होते हैं ? समस्त दोषरहित, और केवलज्ञानादि गुणों सहित होते हैं। ऐसे ही परमात्मा होते हैं, इससे विपरीत हों वे परमात्मा नहीं हैं। इसप्रकार अस्ति-नास्ति से कथन किया। इस गाथा में तीर्थंकर परमदेव के स्वरूप का कथन है। सिद्धदशा को प्राप्त परमात्मा की बात नहीं; किंतु अरहंत दशा में विराजमान तीर्थंकर भगवान की बात है।

आत्मगुणों के घातक चार घातिया कर्म—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय और मोहनीय कर्म हैं। यह कथन निमित्त से है। जबकि एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व में अत्यंत अभाव है तो कौन किसका घात करे ? साथ ही 'गुण का घात' ऐसा कहा—किंतु गुण का घात तो कभी होता नहीं; घात तो गुण की पर्याय का होता है, और वह घात होने की योग्यता भी पर्याय में स्वयं अपने से ही है। जब उसका घात होता है, तब निमित्तरूप से घातिया कर्मों को घात करनेवाला कहा जाता है।

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अन्तराय और मोहनीय यह चार प्रकार के घातियाकर्म हैं, उन चारों का संपूर्ण नाश भगवान ने किया है। भगवान के केवलज्ञान प्रकट होने पर घातियाकर्मों का एक अंश भी शेष नहीं रहता, इसलिये निमित्त से कहा गया कि भगवान ने घातियाकर्मों का नाश किया। कर्म आत्मा के गुणों का घात करते हैं, यह भी निमित्त से कथन है। और आत्मा कर्मों का नाश करता है, यह भी निमित्त का कथन है। निश्चय से तो कोई किसी का कर्ता-हर्ता है नहीं। जब आत्मा की स्वयं की योग्यता से अपनी पर्याय में ज्ञानादि का विकास रुक जाता है तब निमित्तरूप से कर्म को घात करनेवाला कहा जाता है। और जब आत्मा को केवलज्ञान प्रकट होता है, तब आत्मा ने कर्मों का नाश किया ऐसा निमित्त से कहा जाता है। वास्तव में तो कर्म स्वयं अपनी योग्यता से टले हैं।

इस भाँति घातियाकर्मों का नाश कर देने से भगवान समस्त दोष रहित हैं अथवा पूर्वकथित अठारह महादोषों से रहित होने के कारण भगवान दोषरहित हैं। भगवान केवलज्ञानादि गुणों से समृद्ध हैं। ऐसे केवली को माना कब कहा जाये? आत्मा की शक्ति में से जो केवलज्ञान प्रकट हुआ है वैसी शक्ति प्रत्येक आत्मा में विद्यमान है। जब ऐसी शक्ति की प्रतीति करे तब वास्तव में केवली को माना कहा जाये।

भगवान को केवलज्ञान है—ऐसा कहे, किंतु वह केवलज्ञान प्रकट कहाँ से हुआ? आत्मा की शक्ति में से। उस शक्ति की प्रतीति के बिना वास्तव में केवलज्ञान की प्रतीति नहीं होती। भगवान का केवलज्ञान उनकी शक्ति में से प्रकट हुआ है; उसीप्रकार मेरा केवलज्ञान भी किसी निमित्त में से या राग में से प्रकट होनेवाला नहीं है, वह तो शक्ति में एकाग्र होने पर प्रकट होगा। ऐसी शक्ति की प्रतीति करने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान होकर केवलज्ञान होता है। इसप्रकार यह अकेले केवली की बात नहीं है, किंतु जैसी केवली की शक्ति है वैसी ही मेरी भी शक्ति है - ऐसी प्रतीति सहित की बात है।

देखो! जीवों को पूर्व भव के कितने संस्कार रह जाते हैं, परंतु यदि वे चैतन्य के लक्षपूर्वक नित्य के आश्रय से ज्ञान प्रकट करें तो उस ज्ञान के संस्कार आत्मा के साथ नित्य रहें। आत्मा त्रिकाली है, उसके आश्रय से ही भगवान को सकलविमल ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रकट हुआ है।

तदुपरांत, भगवान को परम वीतरागी आनंद प्रकट हुआ है—ऐसा भगवान का वैभव है। पैसा या मकान आत्मा का वैभव नहीं है; आत्मा का वैभव तो केवलज्ञान-दर्शन और परम वीतरागस्वरूप आनंद ही है। ऐसे वैभव से अरहंत भगवान समृद्ध हैं और वही सच्चे देव हैं। भगवान का आनंद वीतरागी है। भगवान लोकालोक का नाटक देखते हैं, इसलिये उनको आनंद है - ऐसा नहीं है। संसारी जीव तो राग से आनंद मानते हैं, परंतु वह आनंद नहीं है। भगवान का आनंद परम वीतरागी है—ऐसे वह परमात्मा हैं। वह परमात्मदशा किस रीति से प्रकट हुई?

'त्रिकाल निरावरण, नित्यानंद-एकस्वरूप निज कारणपरमात्मा की भावना से उत्पन्न कार्यपरमात्मा-वही भगवान अरहंत परमेश्वर हैं।'

अहो! यहाँ तो कार्यपरमात्मा के साथ कारणपरमात्मा को भी सम्मिलित कर लिया है। ध्रुव और वर्तमान—इन दोनों की संधि रखी है। ध्रुव वह कारण और वर्तमान वह कार्य—ऐसे कारण-कार्य को साथ-साथ ही रखा है। ध्रुव-अचल-ज्ञायक एकरूप नित्यस्वभाव है—वह कारणपरमात्मा है, त्रिकाली आत्मद्रव्य नित्य आनंदरूप है—वही कारणपरमात्मा है; उसमें श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता करने का नाम ही कारणपरमात्मा की भावना है। ऐसी भावना से ही भगवान कार्यपरमात्मा हुए हैं। कारणपरमात्मा त्रिकाल है और उसके आश्रय से कार्यपरमात्मारूप नयी दशा प्रकट होती है।

संसार या मोक्ष दोनों ही एक समय की पर्याय हैं, उस एकसमयवर्ती पर्याय जितनी ही समूची वस्तु नहीं है; वस्तु तो त्रिकाल आनंदरूप-एकरूप-ध्रुव है। वह ध्रुववस्तु द्रव्यदृष्टि का विषय है और वही कारणपरमात्मा है, तथा उसी की भावना से कार्यपरमात्मा होते हैं। पूर्णानंद भगवान को कहाँ से प्रकट किया? पहले तो प्रकट था नहीं, और राग में से आनंद आता नहीं, क्योंकि उसका तो अभाव हो जाता है। अतः जो त्रिकाल आनंदस्वरूप कारणपरमात्मा है, वह त्रिकाल आनंदशक्ति से भरपूर है; उसी की श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रतारूप भावना से वह आनंद पर्याय में पूर्ण व्यक्त होता है, उसी की कार्यपरमात्मा संज्ञा है - ऐसे कार्यपरमात्मा ही अरहंत परमेश्वर हैं।

नित्यानंद-एकस्वरूप=नित्यानंद ही जिसका एकस्वरूप है ऐसा (कारणपरमात्मा

तीनों काल आवरणरहित है और नित्यानंद ही जिसका एकस्वरूप है) प्रत्येक आत्मा शक्ति-अपेक्षा निरावरण और आनंदमय ही है, इसलिये प्रत्येक आत्मा कारणपरमात्मा है। जो ऐसे कारणपरमात्मा की भावना करता है, उसी का आश्रय करता है, वह व्यक्ति-अपेक्षा से भी निरावरण और आनंदमय हो जाता है अर्थात् कार्यपरमात्मा हो जाता है। शक्ति में से ही व्यक्ति होती है, इसलिये शक्ति कारण है और व्यक्ति कार्य है। ऐसा होने से शक्तिरूप परमात्मा को कारणपरमात्मा और व्यक्तपरमात्मा को कार्यपरमात्मा कहा जाता है।

कारणपरमात्मा अर्थात् कौन ? सभी आत्माओं का एक अधिष्ठान है वह कारणपरमात्मा है—ऐसा नहीं है; परंतु प्रत्येक आत्मा स्वयं स्वतंत्र त्रिकाल कारणपरमात्मा है। प्रत्येक आत्मा की जो ध्रुव त्रिकाल शक्ति है वही निजकारणपरमात्मा है और उसी के आश्रय से कार्यपरमात्मदशा प्रकट होती है। अरहंत को पहचाना और उनका कारण भी पहचाना। अरहंत वह कार्यपरमात्मा है, उनके सामने कारणपरमात्मा का वर्णन किया-कार्य के साथ ही कारण भी बताया, ऐसी टीकाकार की शैली है। पहले कार्यनियम के साथ कारणनियम त्रिकाल एकरूप बताया था। यहाँ कार्यपरमात्मा का वर्णन है तो उसके समक्ष त्रिकाली कारणपरमात्मा का स्वरूप भी बताया। इस भाँति कारणपरमात्मा में से कार्यपरमात्मा होते हैं।

कारणपरमात्मा अर्थात् शक्ति और कार्यपरमात्मा अर्थात् व्यक्ति। शक्ति में से ही व्यक्ति होती है। शक्ति वह कारणपरमात्मा और उसमें से व्यक्ति वह कार्यपरमात्मा है। शक्तिरूप से सभी आत्माओं में त्रिकाल परमात्मपना है, वह कारणपरमात्मा है; उसी में से कार्यपरमात्मदशा प्रकट होती है। किसी पुण्य, विकल्प अथवा निमित्त में से वह कार्यपरमात्मदशा नहीं आती, व्यवहाररत्नत्रय भी उसका कारण नहीं, और निश्चयरत्नत्रय की पर्याय में से भी परमात्मदशा प्रकट नहीं होती; अत: निश्चयरत्नत्रय की पर्याय भी परमार्थ से कारण नहीं है।

जो कार्य प्रकट हुआ उसके साथ कारणपरमात्मपना भी सदा विद्यमान ही है। यदि निश्चयरत्नत्रय पर्याय में से वह कार्य प्रकट हुआ हो तब तो उस पर्याय का व्यय अर्थात् अभाव होने पर कार्य भी नहीं रह सकता। कार्यपरमात्मदशा प्रकट हुई वह सादि-अनंत रहा करती है, और उसके साथ समय-समय (अर्थात् प्रतिसमय) उसका कारण भी रहा ही करता है; कार्य हुआ वह समय-समय चालू ही रहता है, उसके साथ ही उसका कारण भी चालू ही रहता है। अत: निश्चय से कारणपरमात्मा ही कार्यपरमात्मा का कारण है। समय-समय यदि कारण न

वर्त रहा हो तो परमात्मदशारूपी कार्य भी नहीं टिक सकता। कारण और कार्य-दोनों को साथ ही साथ रखकर अपूर्व बात की है। कारणपरमात्मा त्रिकाल शुद्ध है और उसे जानकर उसी की ही भावना करना, वही परमात्मदशा का कारण है।

कोई कहे कि—शुद्ध आत्मा को तो जाना, परंतु अब जानकर करना क्या? तो ऐसा पूछनेवाले ने शुद्धात्मा को जाना ही नहीं। शुद्ध कारणपरमात्मा को जाने, उसकी प्रतीति करे, उसके समक्ष क्या करना? ऐसा प्रश्न ही नहीं रहता। उस कारणपरमात्मा का आश्रय और भावना करना यही कर्त्तव्य है। कारणपरमात्मा तो त्रिकाल है, परंतु जब उस कारण को कारणरूप से श्रद्धा में लिया तब कार्य प्रकट हुआ। जिसको कारणपरमात्मा की प्रतीति नहीं, उसके लिये तो कारणपरमात्मा है ही कहाँ? उसे तो उसका अस्तित्व ही भासित नहीं हुआ। जहाँ अंतर में झुककर उस स्वभाव को स्वीकार किया, वहाँ उस कारण के आश्रय से कार्य प्रकट हो गया। कारणपरमात्मा की भावना से कार्यपरमात्मदशा प्रकट होती है। स्वयं जागृत हुआ और स्वभाव की श्रद्धा की, तब कहा कि अहो! मैं तो त्रिकाल ऐसा कारणपरमात्मा ही हूँ। उसको श्रद्धा-ज्ञान करके जितनी एकाग्रता की, उतना कार्य प्रकट हुआ; परंतु अज्ञानी कहता है कि बाहर की सामग्री हो तो कार्य प्रकट हो।

यहाँ कहते हैं कि अंतर के ध्रुव कारणपरमात्मा में से कार्य प्रकट होता है। कारणपरमात्मा की भावना ही परमात्मदशा प्रकट करने का कारण है—अन्य कोई कारण है ही नहीं। कार्य को जानने पर उसके ऐसे कारण की प्रतीति भी साथ में होना चाहिये। जो ऐसे कारण को न जाने और बाहर के कारण से केवलज्ञानरूपी कार्य होना माने, उसने तो कार्य को भी जाना नहीं और कारण को भी जाना नहीं। कार्य की पहचान में, कारण की पहचान भी गर्भित है। ऐसे कारणपरमात्मा की प्रतीति सहित केवली भगवान को माने, तो ही केवली भगवान को वास्तव में पहचाना कहा जाये।

यहाँ अरहंत भगवान के स्वरूप की पहचान करवा रहे हैं। अरहंतदेव को पहचाने बिना 'णमो अरिहंताणं' कहे तो इससे कहीं धर्म का लाभ नहीं हो सकता। जिसे अरहंत के गुणों की पहचान नहीं—उसे अपना आत्मा कैसा होता है—इसकी भी पहिचान नहीं, भान बिना स्मरण करे तो शुभभाव से पुण्य तो होगा परंतु धर्म नहीं होगा।

जो अरहंत परमात्मा हैं, वे भी पहले तो संसार में थे, किंतु बाद में आत्मा का भान करके अरहंत हुए। आत्मा का स्वभाव त्रिकाल निरावरण नित्यानंद एकस्वरूप कारणपरमात्मा है, ऐसे अपने आत्मा की ही भावना से अरहंतदशा प्रकट होती है—उसका नाम है कार्यपरमात्मा। एक-एक आत्मा त्रिकाल निरावरण कारणपरमात्मा है। जैसा अरहंत का आत्मा है, वैसा ही मेरा आत्मा शक्तिरूप से है; ऐसे अपने आत्मा को शक्तिरूप से पहचान कर उसकी भावना करना वही परमात्मदशा प्रकट करने का उपाय है।

सर्वज्ञ के ज्ञान में एकसमय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं। जगत में उनका कोई कर्ता नहीं है, सभी पदार्थ अनादि-अनंत स्वयंसिद्ध हैं। आत्मा की पर्याय में क्षणिक विकार है किंतु वह उसका मूल स्वभाव नहीं है, उस विकार से रहित त्रिकाल एकरूप ध्रुवशक्ति का चैतन्यपिंड आत्मा है—वह कारणपरमात्मा है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रता करने पर पूर्ण परमात्मदशा प्रकट होती है। ऐसी दशा जिसके प्रकट हो गयी वही अरहंत परमात्मा है।

एक समय में त्रिकाल और त्रिलोक को जानने की सर्वज्ञदशा प्रकट हुई वह कहाँ से प्रकट हुई? परनिमित्त में से अथवा विकार में से वह दशा प्रकट नहीं हुई, अल्पदशा का अभाव हुआ उसमें से भी सर्वज्ञदशा प्रकट नहीं हुई; अंतर में पूर्ण शक्ति ध्रुवरूप से पड़ी है उसमें से ही सर्वज्ञदशा प्रकट हुई है। जैसे चौसठ पहरी चरपराहट पीपल में ही भरी है, उसी में से प्रकट होती है, बाहर के किसी कारण से वह प्रकट नहीं होती; उसीप्रकार चैतन्य में सर्वज्ञदशा प्रकट होती है, वह कहाँ से आती है? अंदर प्रत्येक आत्मा ध्रुवस्वभावी निरपेक्ष आनंदकंदशक्ति से परिपूर्ण है, उस शक्ति की प्रतीति करके उसमें एकाग्र होने पर परमात्मदशा प्रकट होती है। परमात्मदशा तो कार्य है और उसका कारण आत्मा का नित्यानंद स्वभाव है—उसे कारणपरमात्मा कहते हैं। अरहंतदशा प्रकट हुई वह कार्य है। उस कार्य को पहचान लेने पर उसका कारण भी साथ ही साथ पहचान में आ जाता है। इसके अतिरिक्त बाहर का कारण माने तो उसने परमात्मदशा को पहचाना ही नहीं।

देखो! यह है जैन दर्शन। जैन दर्शन तो वस्तुस्वभाव का दर्शन है। जैसा वस्तुस्वभाव है वैसा ही सर्वज्ञ ने जाना और वैसा ही उनकी वाणी में कहा गया। जैन दर्शन कोई संप्रदाय, बाड़ा

या कल्पना नहीं है। यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है। जिसे इंद्र भी मानते हैं, गणधर भी आदर करते हैं, चक्रवर्ती भी सेवा करते हैं, संत अनुभव करते हैं, अनादि-अनंत यह मार्ग है। जो अनंत तीर्थंकर हुए और होंगे उन सबका यही मार्ग है।

वर्तमान में भी महाविदेह में भगवान श्री सीमंधर आदि तीर्थंकर विराज रहे हैं, वे भी ऐसे कारणपरमात्मा के आश्रय से अरहंतदशा को प्राप्त हुए हैं। महाविदेह में भगवान विराजते हैं, पाँच सौ धनुष प्रमाण शरीर है, केवलज्ञान सहित समवसरण में विराजमान हैं, और वाणी का योग है। उन भगवान ने किसप्रकार केवलज्ञान प्राप्त किया उसकी यह बात है। वह बात भगवान को पूछने जाना पड़े—ऐसा नहीं है। यहाँ तो अपने आत्मस्वभाव की पहचान होने पर उसका निर्णय हो जाता है। निजकारणपरमात्मा को पहचान कर उसकी भावना करना ही कार्यपरमात्मा होने का उपाय है।

विकार और शरीर में सुख मानकर उसकी भावना करे वह तो संसार का कारण है। और विकार तथा देहादि से रहित निरपेक्ष ध्रुव परमात्मा की भावना करना केवलज्ञान का कारण है। चैतन्यस्वभाव की 'भावना' वह मोक्षमार्ग है। 'भावना' अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों से युक्त—वह भावना है।

अरहंत भगवान कार्यपरमात्मा हैं—उनके कारण को पहचानना चाहिये, क्योंकि कारण को पहचाने बिना कार्य की पहचान भी सच्ची नहीं होती। यदि राग के कारण केवलज्ञान को माने तो उसने केवलज्ञान को पहचाना नहीं। सर्वज्ञ भगवान स्वयं निजकारण-परमात्मा की भावना से परमात्मा हुये और जगत में भी यह घोषणा की कि तुम भी शक्तिरूप से कारणपरमात्मा हो, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसी में एकाग्रता करो। किसी बाहर के आश्रय से तुम्हारी परमात्मदशा नहीं होगी, वह तो अंदर के स्वभाव के आश्रय से ही प्रकट होगी; क्योंकि जहाँ शक्ति विद्यमान होगी, वहीं से प्रकट होगी-बाहर से नहीं। इसी विधि से भगवान परमात्मा हुये और जगत को भी वही विधि बतायी। जिसको परमात्मा बनना हो वह अपने आत्मा को पहचानकर उसी में एकाग्र होवे—इसके बिना जन्म-मरण टलेगा नहीं। भगवान को पहचानते ही, भगवान बनने की विधि भी ज्ञात हो जाती है।

जो ऐसे कारणपरमात्मा की भावनारूप विधि से भगवान हुये, वे ही भगवान अरहंतदेव

हैं, उनके आहारादि नहीं होते। ऐसे भगवान अरहंतदेव के जैसे गुण हैं, वैसे गुण जिनमें न हों और उनसे विपरीत हों, वे सब देवाभास हैं-कुदेव हैं। वे भले ही देवत्व के अभिमान से मुख फुलाये हों, फिर भी वे वास्तविक सच्चे देव नहीं हैं, अपितु संसारी ही हैं। उनका कथित मार्ग उन्मार्ग ही है, मोक्षमार्ग नहीं।

एक क्षण में परिपूर्ण चैतन्यमूर्ति कारणपरमात्मा है, उसको जो नहीं मानता और कार्य प्रकट होने के लिये किसी बाहरी कारण को मानता है, वह देव नहीं है और उसका कहा हुआ मार्ग मोक्षमार्ग नहीं अपितु उन्मार्ग है। ऐसे कुदेवादि को मानने से मिथ्यात्व होता है। यहाँ जो सर्वज्ञ के बताये हुए भगवान को नहीं मानता—पहचानता, उसकी तो व्यवहारश्रद्धा भी सच्ची नहीं है।

इसीप्रकार भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रवचनसार की गाथा में कहा है :—

तेजो दिट्ठो णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं।
तिहुवणपहाणदहयं माहप्पं जस्स सो अरिहो॥

अर्थ:—तेज (भामंडल), दर्शन (केवलदर्शन), ज्ञान (केवलज्ञान), ऋद्धि (समवसरणादि विभूति), सौख्य (अनंत अतीन्द्रियसुख), इंद्रादिक भी जिसका दासत्व स्वीकार करें ऐसा ऐश्वर्य, और त्रिलोक के अधिपतियों के वल्लभरूप त्रिभुवन प्रधानवल्लभपना—ऐसा जिनका माहात्म्य है, वे अरहंत हैं।

यह गाथा श्री जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। उसमें अरहंतदेव की पहचान करवायी है। स्वयं भले ही अभी परमात्मा न हुआ हो; फिर भी परमात्मा कैसे होते हैं, उसकी पहचान तो होती है न? जैसे निर्धन मनुष्य हो तो भी वह राजा की परीक्षा करके उसे पहचान तो सकता है न? उसीप्रकार परमात्मा होने से पहले अल्पज्ञ प्राणी भी सर्वज्ञ परमात्मा की परीक्षा करके उनकी पहचान कर सकता है। अत: परीक्षा करके पहचानना चाहिये कि सर्वज्ञता को प्राप्त परमात्मा कैसे होते हैं, तथा उनसे विरुद्ध कौन हैं? भगवान ने छह द्रव्यों का ज्ञान किया और कथन किया, उसमें अपना जो परम चैतन्यस्वभाव ध्रुव कारणपरमात्मा है, उसकी भावना को ही परमात्मदशा का कारण कहा है।

परमात्मदशा प्रकट हुई हो तो शरीर एकदम सुंदर-रूपवान स्फटिक जैसा होता है, उसके भामंडल अर्थात् तेज होता है। यह सब तो पुण्य का फल है।

पुनश्च, उन अरहंत परमात्मा के केवलदर्शन और केवलज्ञान होता है, समवसरणादि ऋद्धि भी होती है। यद्यपि भगवान तो स्वयं वीतराग हैं, परंतु इंद्र और देवगण आकर समवसरण की अद्‌भुत रचना करते हैं—जिसमें रत्नजड़ित स्वर्ण-मानस्तंभ होते हैं; धर्मसभा में देव, मनुष्य, सर्प, सिंह, बाघ इत्यादि लाखों करोड़ों जीव धर्म श्रवण करने आते हैं—ऐसे समवसरण में भगवान विराजते हैं। भगवान किसी के घर में नहीं उतरते, जहाँ परमात्मदशा हुई वहाँ बाहर में भी ऐसा योग तीर्थंकर को होता है। इसके अतिरिक्त भगवान को आत्मा के स्वभाव की भावना से उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय परमसुख होता है।

इंद्र आदि भी भगवान का दासत्व करते हैं। भगवान की प्रभुता के सामने इंद्र भी नम्र होकर नत मस्तक हो जाता है। हे नाथ! हम तो तुम्हारे किंकर हैं, दास हैं—ऐसा भगवान का ऐश्वर्य है। तीन लोक के अधिपतियों के भगवान वल्लभ हैं—ऐसी महिमावाले अरहंत परमात्मा हैं। ऐसे अरहंत को पहचान कर और उनके द्वारा प्रतिपादित आत्मा का भान करने पर पाप का नाश हो जाता है; परंतु भगवान कहीं किसी के पाप का नाश नहीं करते।

सुरनाथ इंद्र तथा नरनाथ चक्रवर्ती भी ऐसे सर्वज्ञ भगवान के समक्ष तुच्छ हैं। उर्ध्वलोक का स्वामी इंद्र भी भगवान की भक्तिपूर्वक स्तुति-वंदना करके कहता है कि हे नाथ! हम तो आपकी प्रभुता के सामने पामर हैं—ऐसी भगवान की प्रभुता है। ऐसे भगवान को माने नहीं, और यद्वा-तद्वा को मानकर उन्हें माथा झुकावे तो कहीं कल्याण होनेवाला नहीं है। सम्यग्दृष्टि जैन ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य के पद-स्पर्श नहीं करता। जिन्हें ऐसी सर्वज्ञदशा प्राप्त नहीं है और जो सदोष हैं, वे सब देवाभास हैं। ऐसे देवाभास कुदेवों को जो मानते हैं, वे तो व्यवहार से भी जैन नहीं हैं।

इसीप्रकार श्री आचार्य अमृतचंद्रसूरि आत्मख्याति के २४वें श्लोक में कलश में कहते हैं:—

कांत्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये।
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये॥

दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं।
वंद्यास्तेऽष्टसहस्त्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः॥

जो कांति से दशों दिशाओं को धोते हैं, निर्मल करते हैं, जो तेज द्वारा अत्यंत तेजस्वी सूर्यादिक के तेज को ढँक देते हैं, जो रूप से जनों के मन हर लेते हैं, जो दिव्यध्वनि द्वारा भव्यों के कानों में मानों कि साक्षात् अमृत बरसाते हों—ऐसा सुख उत्पन्न करते हैं, और जो एक हजार आठ लक्षणों को धारण करते हैं; वे तीर्थंकरसूरि वंद्य हैं।

भगवान अरहंत परमात्मा का शरीर ऐसा तेजस्वी होता है कि दशों दिशायें उज्ज्वल हो जाती हैं, हजारों चंद्र-सूर्य जैसा प्रकाश होता है, मध्यरात्रि में भी शरीर में से सूर्य-चंद्र जैसा प्रकाश निकलता है अर्थात् वहाँ अँधेरा नहीं होता। अंदर जहाँ केवलज्ञान का दिव्य प्रकाश प्रकट हुआ वहाँ शरीर भी अत्यंत तेजस्वी हो जाता है। उस शरीर में देखनेवाले को अपने वर्तमान भव के साथ अगले-पिछले तीन-तीन भव और दिखायी पड़ते हैं, अर्थात् कुल सात भव दिखायी पड़ते हैं। भगवान के शरीर का तेज सूर्य-चंद्र से अधिक है तो उनके चैतन्यसूर्य की तो बात ही क्या करें? उनके देह का रूप भी जनों के मन को मोहित कर लेता है। मूल्यवान हीरे की धूल भी मूल्यवान होती है। उनका शरीर तो जन्म से ही ऐसा रूपवान होता है कि इंद्र भी उसे अवलोकन करते-करते तृप्त नहीं होता, और केवलज्ञान होने पर तो परम औदारिक—स्फटिक जैसा हो जाता है। भगवान के ऐसी दिव्यध्वनि छूटती है कि श्रोताओं के कर्ण-विवर में मानो अमृत उँडेला जा रहा हो—अमृतपान जैसा सुख प्राप्त हो रहा हो। भगवान के समवसरण में भव्य जीव ही होते हैं, अभव्य जीव आत्मा से तो दूर होते ही हैं तथा भगवान की वाणी से भी दूर रहते हैं। अभव्य के भगवान की वाणी सुनने का योग नहीं होता। भगवान की वाणी श्रवण करते ही भव्यजीव ऐसे लीन हो जाते हैं कि बिलाव तथा मूषक, सिंह और हिरन अपने बैरभाव तथा भय का विस्मरण करके एक साथ बैठकर सुनते हैं—ऐसी उन जीवों की योग्यता होती है। पुनः भगवान के देह में एक हजार और आठ सुंदर लक्षण होते हैं—ऐसे तीर्थंकरसूरि वंद्य हैं।

अब सातवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक द्वारा श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की स्तुति करते हैं:—

जगदिदमजगच्च ज्ञाननीरेरुहान्तर्भ्रमरवदवभाति प्रस्फुटं यस्य नित्यम्।
तमपि किल यजेहं नेमितीर्थंकरेशं जलनिधिमपि दोर्भ्यामुत्तराम्यूर्ध्ववीचिम्॥१४॥

जिसप्रकार कमल के भीतर भ्रमर समा जाता है, उसीप्रकार जिनके ज्ञानकमल में यह जगत तथा अजगत (लोक तथा अलोक) सदा स्पष्ट रूप से समा जाते हैं—ज्ञात होते हैं; उन नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान को मैं सचमुच पूजता हूँ कि जिससे ऊँची तरंगोंवाले समुद्र को भी (दुस्तर संसार को भी) दो भुजाओं से पार कर लूँ।

टीकाकार मुनि स्वयं महाब्रह्मचारी हैं और बालब्रह्मचारी नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं।

भगवान को जहाँ अंतरस्वभाव की शक्ति में से ज्ञान विकसित हुआ वहाँ उन्हें लोकालोक ज्ञात हो जाते हैं। जैसे भ्रमर कमल में समा जाता है, अर्थात् कमल बड़ा और भ्रमर छोटा होता है; उसी तरह ज्ञानकमल में लोकालोक प्रत्यक्षपने समा जाता है, अर्थात् ज्ञान-सामर्थ्य महान और लोकालोक तुच्छ है-ऐसा भगवान का केवलज्ञान है। वह केवलज्ञान आया कहाँ से? आत्मा की शक्ति में से ही आया है। ऐसी ही अपने आत्मा की शक्ति है, उसका विश्वास करके एकाग्र हो तो परमात्मदशा प्रकट होती है।

अहो! जिन्होंने अपने ज्ञानकमल में लोकालोक को प्रत्यक्ष जान लिया ऐसे श्री नेमिनाथ भगवान को मैं नमन करता हूँ कि जिससे ऊँची तरंगोंवाले इस समुद्र को अपनी दो भुजाओं से पार कर जाऊँ। चाहे जितने विकल्पों की तरंगें उठें, उन्हें मैं अपने स्वभाव की श्रद्धा और एकाग्रता के बल से पार कर जाऊँ और पूर्ण परमात्मदशा को प्रकट करूँ।

इसप्रकार अरहंत भगवान को पहचानकर उन्हें नमस्कार किया।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(१) आत्मा सर्वव्यापक है:—केवलज्ञान अवस्था में व्यवहारनय की अपेक्षा से आत्मा को लोक-अलोक में व्यापक माना गया है, किंतु स्वयं के असंख्य प्रदेशों में व्यापकत्व छोड़कर परक्षेत्र में व्यापक नहीं होता। सर्व को जानने की अपेक्षा से, व्यवहार से उपचार से व्यापक कहा गया है। नैयायिक मीमांसक सांख्यमतवाले आत्मा को प्रदेशों की अपेक्षा व्यापक मानते हैं—ऐसा नहीं है।

(२) जड़:—पाँच इंद्रियों और मन के विषयों के जो शुभ-अशुभ विकल्प उनसे रहित जो अतीन्द्रिय स्वसंवेदन समाधि-ध्यानरूपज्ञान से आत्मा में लीन होता है; उस समय उसके जो एक आत्मज्ञान में लीनता-एकाग्रता है—उसमें बाह्य विषयरूप इंद्रियज्ञान का अभाव है—उस अपेक्षा से आत्मा को जड़ मानने में आता है। बाहर उपसर्ग, परीषह, संकल्प, विकल्प का विचार नहीं है; इस अपेक्षा से अतीन्द्रियज्ञान को जड़ कहा है। अपनी ओर की जागृति रही है और पर ओर की जागृति गयी है। लेकिन सांख्यमती जैसा आत्मा जड़ नहीं है।

किसी को प्रश्न होता है कि शास्त्रों द्वारा विशेष (बहुत) ज्ञान होता है, बाहर (बाह्य) का भी बहुत जाना जाता है तो वह ज्ञान का विकास आत्मा को जानते समय कहाँ गया? उससे कहते हैं कि बाह्य का जानना (जानपना) कम हो या अधिक हो उसका मूल्य नहीं है, 'पर' ओर के विकल्परूप विकास का अंतर के लिये (चैतन्य को) आवश्यक नहीं है। बाह्य विषयों को नहीं जानता इसलिये ज्ञान कम हो गया, ऐसा नहीं है। अंतर्मुख द्रव्यस्वभाव में एकाग्र हुआ उसको निर्मल वीतरागज्ञान में जागृति बढ़ी है, जड़ता नहीं। बाह्य में शरीर घाणी में पेला जाये, सिंह फाड़कर खा जाये, तो भी ध्यान के समय उसको ज्ञान नहीं जानता। निश्चय से उस समय अखंड चैतन्य ज्ञानानंद की जागृति है। व्यवहार में जड़ है। एक साथ दोनों ओर का लक्ष्य नहीं होता। पाँच इंद्रियों के उपयोग को भूला, व्यवहारातीत हुआ, निश्चय स्वाश्रय स्वभावपने से अंदर एकाग्र हुआ, तब मुनिदशा और केवलज्ञान दशा प्रकट होती है।

आत्मा के स्वभाव की ओर झुकाव से स्वसंवेदन में एकाग्र हुआ उस समय इंद्रिय ओर के ज्ञान का अभाव है, इस अपेक्षा से आत्मा को जड़ कहा। यह बात करके ऐसा बताया कि बाह्य विषयों में जागृति न होने पर भी अंतर में ज्ञान की जागृति बढ़ती है, साधक भाव की उग्रता बरतती है (रहती है)। इसलिये हे मूढ़ अज्ञानी! तू इंद्रियज्ञान की महिमा छोड़। ध्यान के समय इंद्रियज्ञान न होने पर भी साधक भाव की उग्रता है।

(३) शून्यः—और फिर आत्मा जब स्वसन्मुख होकर स्वभाव में ठहरा रहा, तब अंतर में उसको राग-द्वेषादि विभाव परिणामों का अभाव है। इस अपेक्षा से आत्मा शून्य भी है; किंतु सर्वथा शून्य नहीं है, विभाव से शून्य है। सत्य को स्थापित किया और असत्य को उखाड़ा-दूर किया, ऐसा विकल्प भी अंतरंग के ध्यान समय उठता नहीं है। 'सत्तास्वरूप' में ऐसा कहा है कि असत्य की प्ररूपणा सुनने से यदि अंदर उसको दूर करने का-हटा देने का तलाक भाव न आये तो वह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यहाँ तो उस विकल्पवाले जीव की बात है। यहाँ तो ध्यान समय की बात है। विकल्प आता है, वह स्वयं की कमजोरी है। उस कमजोरी को दूर करके अप्रमत्त होकर स्वरूप में स्थिर हुआ, वहाँ ऐसी उग्रता हो जाती है कि विकल्प भी नहीं उठता; इसलिये वहाँ विभाव की शून्यता है। स्वयं के अनंत ज्ञानादि स्वभाव से भरपूर परिपूर्ण है और विभाव से खाली है। धर्मी को शासन की प्रभावना का भाव आता है, सत्य के जोर-शोर से स्थापना का भाव आता है-लेकिन वह राग है। जब चिदानंद स्वरूप में स्थिर हुआ तब तो वैसा राग भी नहीं होता वहाँ राग की शून्यता है और ज्ञान की पूर्णता है। जहाँ ज्ञान की पूर्णता हुई, वहाँ राग की शून्यता है। बौद्धमतवाले ऐसा कहते हैं कि जैसे दीपक में से काजल निकालने के लिये दीपक को ही बुझा देना चाहिये, वैसे आत्मा में से विकार निकालने के लिये ज्ञान का भी अभाव हो जाता है। यह बात असत्य है, उसका उदाहरण भी खोटा, असत्य है। काजल बगैर के दीपक भी होता है, वैसे राग बगैर का (रागरहित) ज्ञान भी रहता है। राग का नाश होने से कुछ ज्ञान का नाश नहीं हो जाता। आत्मा राग से रिक्त है लेकिन ज्ञान से लबालब भरी हुई है।

(४) आत्मा को 'अणुमात्र' कहा है। वहाँ 'अणु' कहने से एक पुद्गल परमाणु न समझना; किंतु 'अणु' अर्थात् सूक्ष्म शरीर, उस शरीर प्रमाण आत्मा होती है। उस अपेक्षा से 'अणुमात्र' कहा जाता है। निगोद के लब्धि अपर्याप्तक जीव को जो छोटे में छोटा शरीर होता है, वह आँख से दिखता नहीं ऐसा सूक्ष्म है। उसको यहाँ 'अणु' कहा है। वह अणुप्रमाण होने से

आत्मा को अणुमात्र कहा है। उस समय भी असंख्य प्रदेश तो उतने के उतने ही हैं।

(५) 'गुरु' कहने से एक हजार योजन का बड़ा शरीर समझना। एक हजार योजन का मत्स्य (मच्छ) होता है। उस शरीरप्रमाण आत्मा है, उस अपेक्षा से आत्मा 'गुरु' अर्थात् बड़े (विशाल) शरीरप्रमाण है। अणु और गुरु के बीच की जो अवगाहना है, वह मध्यम अवगाहना है। इसप्रकार जीव छोटे-बड़े शरीरप्रमाण है। इस शरीरप्रमाण वह व्यवहारनय से है, और असंख्यात प्रदेशी यह निश्चयनय से है।

इसप्रकार नयार्थ कहा। अब भावार्थ अर्थात् गाथा का तात्पर्य कहते हैं।

यहाँ इस गाथा का तात्पर्य यह है कि चैतन्य को भूलकर देह के ममत्व को लिये देह को धारणकर जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। अतएव इस देहादिक के ममत्व को छोड़ कर निर्मोह ऐसे स्वयं के शुद्ध चिदानंदस्वभाव को पहिचानकर उसकी भावना करना, ऐसी शुद्ध आत्मा की भावना करने से देह का अभाव होकर शुद्ध सिद्धदशा प्रकट होती है। आत्मा को 'देहमात्र' कहा, वह कुछ देह की भावना करने के लिये नहीं कहा। किंतु देह से भिन्न चिदानंदमूर्ति आत्मा को जानकर उसकी भावना करना, यह तात्पर्य है। अतएव देह से भिन्न चैतन्यतत्त्व क्या है? उसको पहिचानकर शुद्ध जीव की भावना भाना ॥१०॥

अब तीन गाथाओं में १४ मार्गणास्थान, १४ जीवसमास, १४ गुणस्थान द्वारा सर्व संसारी जीवों का स्वरूप नयविभाग से कहते हैं। व्यवहारनय से देखो तो वर्तमान पर्याय में संसारीपना होने पर भी निश्चयनय से तो सर्व संसारी जीव सिद्ध परमात्मा समान शुद्ध हैं।

पुढविजलतेयवाउ, वणफ्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति के भेदों से अनेक प्रकार के स्थावर जीव हैं, वे सब स्वयं की ही योग्यता से एक स्पर्शन इंद्रिय को धारण करते हैं और वह शुद्ध चिदानंद स्वभावी अपनी वस्तु की विराधना से स्वयं किये हुये अपराध का फल है। तथा शंखादि दो, तीन, चार और पाँच इंद्रियों के धारक त्रस जीव हैं। उनको कोई ईश्वर ने किया (बनाया) नहीं है। किसी (कोई) कर्म को लेकर उनको ऐसी दशा में भटकना, दुःख उठाना पड़ता है; ऐसा भी नहीं है।

यद्यपि प्रत्येक जीव अतीन्द्रिय मूर्तिक ज्ञायक अविकारी निज परमात्मस्वभाव है तथापि स्वयं के अनाकुल आनंदरूप अनुभव से उत्पन्न सुखरूपी अमृत रस को न पाकर स्वयं

ही भूला हुआ है और तुच्छ इंद्रियों के अवलंबन से उत्पन्न आकुलतामय सुख की अभिलाषा किया करता है।

ज्ञानी साधक तो पूर्ण ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से निर्मल विकास में जागृत है। अज्ञानी वर्तमान हीन पर्याय में रुका हुआ है। देखो, स्वयं की भूल से एकेन्द्रिय आदि में भटकता है।

कोई नामधारी विद्वान कहता है कि एकेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों को कर्म का जोर है, इससे संसार में घूमता है। तब यहाँ टीकाकार कहते हैं कि अतीन्द्रिय अमृतानंद स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है, वह जीव की स्वयं की भूल है; कोई काल, क्षेत्र, संयोग, कर्म अथवा ईश्वर ने भूल करायी है—ऐसा नहीं है। अज्ञानी त्रिकाल मुक्तानंद चैतन्य की रुचिप्रतीति नहीं करता है, और परइंद्रिय की ओर, वर्तमान पर्याय की ओर के झुकाव से पर में सुख मानता है। ज्ञानी पर से राग-द्वेष अथवा सुख-दुःख नहीं मानता है, इसलिये ज्ञानी को गृहस्थावस्था में विषयों की ओर अल्प राग होने पर भी उसको विषयों में सुख की अभिलाषा नहीं है, वह तो ज्ञानानंद निधि में निरंतर संतोषी है; इसलिये एकेनिद्रय आदि में उत्पन्न नहीं होता।

अज्ञानी स्वयं को भूलकर विषयों की इच्छा करता है। ज्ञानानंद निधि को भूलता है और इंद्रिय सुख में आसक्त होकर एकेन्द्रिय आदि जीवों का घात करता है, उससे त्रस स्थावर नामकर्म के उदय से और स्वयं की योग्यता से पृथ्वी आदिरूप होता है। वह जीव स्पर्शन इंद्रिय सहित एकेन्द्रिय होता है। मात्र स्थावर ही नहीं होता, किंतु त्रस नामकर्म के उदय से दो, तीन, चार तथा पंचेन्द्रियधारी त्रस भी होता है। शंख आदि ने स्पर्शन, रसना ये दो भाव इंद्रियरूप अल्प विकास को पाया-प्राप्त किया। वह स्वयं की पर्याय की योग्यता से पाता है और उसके योग्य द्रव्यइंद्रिय का संयोग मिलता है। कोई का कर्त्ता कोई नहीं है। इस प्रमाण से (इसप्रकार से) जो पंचेन्द्रिय तक का जितना क्षयोपशम (उघाड़, विकास) प्राप्त करता है, उसको उतनी जड़ इंद्रियाँ प्राप्त होती हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि निर्मलज्ञान, दर्शन, आनंदस्वभाव के धारक निज परमात्मरूप आत्मा की भावना से उत्पन्न पारमार्थिक सुख को जो जीव विपरीत पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं करता वह इंद्रियसुख में आसक्त होकर हिंसक होता है; त्रस, स्थावर में उत्पन्न होता है। उसके नाश (नष्ट) करने के लिये पूर्वोक्त प्रकार से शुद्ध परमात्मस्वरूप में भावना-एकाग्रता करना योग्य है। वह एक समय में त्रिकाली ज्ञानानंद से भरा हुआ है। उसकी श्रद्धा, रुचि, तन्मयता कर उसकी ही भावना करना योग्य है ॥११॥ [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की विधि क्या है ?

उत्तर- 'पर का कर्ता आत्मा नहीं, राग का भी कर्ता नहीं, राग से भिन्न ज्ञायक मूर्ति हूँ'—ऐसी अंतर में प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की विधि है। ऐसा समय मिला है जिसमें आत्मा को राग से भिन्न कर देना ही कर्तव्य है। अवसर चूकना बुद्धिमानी नहीं।

प्रश्न- सम्यग्दर्शन किससे प्रगट होता है ?

उत्तर- सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई है, वह राग की मंदता के कारण प्रगट हुई है—ऐसा तो है ही नहीं; किंतु सूक्ष्मता से देखें तो द्रव्य-गुण के कारण सम्यग्दर्शन हुआ है- ऐसा भी नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का लक्ष और ध्येय व आलंबन यद्यपि द्रव्य है; तथापि वह पर्याय अपने ही षट्कारक से स्वतंत्र परिणमित हुई है। जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, उसको निमित्तादि का अवलंबन तो है नहीं, वह द्रव्य के कारण उत्पन्न हुई है-ऐसा भी नहीं है।

अंतर का रहस्य कच्चे पारे की तरह बहुत गंभीर है, पचा सके तो मोक्ष होता है।

प्रश्न- सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प होता है तभी आनंद का अनुभव करता होगा, शेष काल तो प्रमाद में ही जाता होगा ?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि सदाकाल शुद्धता में ही वर्तता है। भले निर्विकल्प उपयोग न हो और राग में प्रवृत्ति करता हो, खाना-पीना-सोना अथवा पूजा-भक्ति-श्रवण आदि बाह्य उपयोग में-राग में वर्तता हो, तो भी उस समय शुद्धता में ही वर्त रहा है। अंतर्दृष्टि तो स्वभाव में ही पड़ी है, इसलिये रागरूप प्रवृत्ति होने पर भी उस राग को, दृष्टि के जोर में, परिणमित नहीं किया जाता। इसलिये सम्यग्दृष्टि सदाकाल अनुभूति में ही वर्तता है, शुद्धपनारूप

ही वर्तता है–ऐसा कहने में आता है। सम्यग्दृष्टि स्वरूप में जागृत हुआ है, वह तो निरंतर जागृत ही है। श्रेणिक आदि नरक में हैं, वे भी शुद्धपने में ही वर्त रहे हैं–राग में नहीं। राग आता है, उसे जानते हैं, किंतु उसमें वर्तते नहीं।

प्रश्न– सम्यग्दृष्टि का उपयोग पर में हो तब स्व–प्रकाशक है क्या ?

उत्तर– सम्यग्दृष्टि का उपयोग पर में हो तब भी स्व–प्रकाशक है, परंतु उपयोगरूप परप्रकाशक के काल में उपयोगरूप स्व–प्रकाशक नहीं होता और जब उपयोगरूप स्व–प्रकाशक हो तब उपयोगरूप पर–प्रकाशक नहीं होता; किंतु ज्ञान का स्वभाव तो स्व–परप्रकाशक ही है।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् साधुपने के लिये व्रतादि तो करने पड़ेंगे न ?

उत्तर– भाई ! साधुपना कहीं बाहर से अथवा व्रतादि के विकल्पों से आता नहीं है; अतीन्द्रिय आनंद की जमावट हो वह साधुपना है। आनंद की उग्र जमावट होने पर व्रतादि के विकल्प भी सहज ही होते हैं, किंतु अंतर में स्थिरता का होना ही साधुपना है।

प्रश्न– आत्मा में तो अनंत शक्तियाँ हैं। उनमें से कोई शक्ति ऐसी भी होगी कि आत्मा परद्रव्य का कार्य भी करे ? जिसप्रकार एक गाय को चराने जायें तो उसके साथ में ही अन्य भी दो–चार गायें चराने को ले जाते हैं; उसीप्रकार आत्मा अपना कार्य करने के साथ शरीरादि का भी कार्य करे तो क्या दोष है ?

उत्तर– भाई, सुनो ! आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं। वे अपना संपूर्ण कार्य करती हैं और अन्य द्रव्य से भिन्नपने स्वयं को टिकाये रखती हैं। अन्य द्रव्य आत्मा से बाहर लोटते होने से तथा अन्य द्रव्यों में आत्मा का व्याप्य–व्यापक भाव का अभाव होने से आत्मा ज्ञानावरणीयकर्म अथवा शरीरादि अन्य द्रव्यों का कार्य करने में असमर्थ है।

प्रश्न– ज्ञान प्राप्ति का फल तो राग का अभाव होना है न ?

उत्तर– राग का अभाव अर्थात् राग से भिन्न आत्मा के अनुभवपूर्वक भेदज्ञान का होना। इसमें राग के कर्तापने का–स्वामीपने का अभाव हुआ, राग में से आत्मबुद्धि छूट गयी; यही राग के प्रथम नंबर का अभाव हो गया।

प्रश्न– आत्मा का ज्ञान–स्वभाव है तो राग कैसे होता है ?

उत्तर– अपने स्वभाव को भूलकर पर को अपना मानता है, इसलिये पर में राग करता है। निमित्ताधीन बुद्धि होने से, रागादि में एकत्व बुद्धि होने से, पर्यायबुद्धि होने से राग होता है। आत्मा के द्रव्य–गुण में राग करने की शक्ति नहीं है; किंतु पर्याय में विकार होने की योग्यता से राग होता है।

प्रश्न– जीव को शरीरवाला अथवा रागवाला कहना तो व्यवहार से कथन है; किंतु जीव को सम्यग्दर्शनवाला तो कह सकते हैं ?

उत्तर– जीव को सम्यग्दर्शनवाला कहना भी पर्याय से कथन है। जीव तो विज्ञानघनस्वरूप है। सम्यग्दर्शन पर्याय तो एक अंश है; जबकि जीव त्रिकाली विज्ञानघनस्वरूप है।

प्रश्न– इष्टोपदेश में आता है कि जीव और देह को जुदा जानना ही बारह अंग का सार है– इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– जीव और देह को–पुद्गल को जुदा जाने अर्थात् विकार भी आत्मा के स्वभाव से जुदा है यह भी उसमें गर्भित है। पुद्गल से और विकार से भिन्न आत्मा के स्वभाव को जानना, अनुभव करना–वही द्वादशांग का सार है। द्वादशांग में आत्मानुभूति करने को कहा गया है।

.....जीवन ही बदल डाला!!

आत्मधर्म के माध्यम से मैं अपने आपको पूज्य स्वामीजी के बहुत ही निकट अनुभव करता हूँ। यद्यपि स्वामीजी के साक्षात् प्रवचनों का लाभ तो नहीं मिला, परंतु आत्मधर्म द्वारा स्वाध्याय निरंतर होता रहता है।

मैं विगत ८ वर्षों से आत्मधर्म का ग्राहक हूँ। आत्मधर्म ने तो मेरा जीवन ही बदल डाला है। पहले कार्यालय से आकर रेडियो खोलकर जहाँ फिल्मी गीत, समाचार आदि सुनने की रुचि रहती थी, वहाँ अब तो समाचारों के अतिरिक्त रेडियो खोलने का ध्यान भी नहीं आता।

वैसे समाचार पत्र भी मात्र १०-१५ मिनिट में पढ़कर रख देता हूँ। आत्मधर्म का महीने भर में कम से कम ४-५ बार पारायण करता हूँ, फिर भी अधिक पढ़ने की जिज्ञासा बनी रहती है। एक-एक विषय को जितनी बार पढ़ता हूँ, उसमें उतना ही अधिक आनंद आता है और आत्मशांति मिलती है।

विगत ६ वर्षों से मैं उच्च रक्तचाप का शिकार हूँ। जब भी कुछ मानसिक तनाव या उत्तेजना अनुभव करता हूँ, आत्मधर्म खोलकर बैठ जाता हूँ-सारे तनावों से मुक्ति मिल जाती है।

आपके द्वारा प्रतिपादित दशलक्षणा धर्म का विवेचन व पूज्य स्वामीजी के प्रवचन विशेषकर द्रव्यसंग्रह प्रवचन से स्वाध्याय की ओर सहज प्रवृत्ति होती है। आत्मधर्म की किन विशिष्ट पंक्तियों की चर्चा करूँ, प्रत्येक पंक्ति ही तो मार्गदर्शक बन जाती है। आत्मधर्म का एक माह तक प्रतीक्षा करना अखरने लगा है। अत: मेरा सुझाव है कि इसे शीघ्रातिशीघ्र पाक्षिक बनाने का प्रयास करें।

— कैलाशचंद्र जैन, टूंडला (उ.प्र.)

समाचार दर्शन

सोनगढ़—पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रात: 'समयसार कलशटीका' पर तथा मध्याह्न 'प्रवचनसार' में समागत ४७ नयों पर पूज्य गुरुदेव के मर्मस्पर्शी प्रवचन चल रहे हैं।

दिल्ली—स्थानीय दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल का निर्वाचन माननीय श्री बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री नेमीचंदजी पाटनी तथा पंडित ज्ञानचंदजी के सान्निध्य में संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री बाबूभाई मेहता ने सुझाव दिया कि दिल्ली में एक 'जैनसाहित्य सदन' खोला जाये ताकि समाज को सस्ते मूल्य पर साहित्य सुलभ हो सके। सभी सदस्यों ने शीघ्र ही इस पर कार्यवाही करने का आश्वासन दिया। स्थानीय समाज को दो दिन तक समागत विद्वानों के मार्मिक प्रवचन सुनने का लाभ मिला।

दिल्ली मुमुक्षु मंडल के महामंत्री श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन द्वारा दिनांक १५ फरवरी ७८ से २२ फरवरी ७८ तक माडल बस्ती में सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन किया जा रहा है। विधान श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के सान्निध्य में संपन्न होगा। इस अवसर पर श्री

बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा श्री नेमीचंदजी पाटनी के पधारने की पूरी-पूरी संभावना है। **— रविचंद जैन, प्रचार मंत्री**

जयपुर—श्री टोडरमल स्मारक भवन में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के उद्घाटन के पश्चात् निरंतर विद्वानों के समागम से आध्यात्मिक वातावरण बना हुआ है। इसी शृंखला में दिनांक १६-१२-७७ से ३१-१२-७७ तक श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के बहुत ही गंभीर तथा मार्मिक प्रवचन हुए। पंडितजी के प्रवचनों का आयोजन श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर तेरापंथियान तथा मुलतान दिगम्बर जैन मंदिर आदर्शनगर में भी किया गया।

महाविद्यालय में छात्रों द्वारा रविवारीय आध्यात्मिक गोष्ठी का आयोजन भी सुचारूरूप से चल रहा है। दिनांक २५-१२-७७ को श्री पंडित ज्ञानचंदजी की अध्यक्षता में हुई गोष्ठी में 'व्यवहारिक जीवन में धर्म की उपयोगिता' विषय पर विभिन्न छात्रों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। **— कपूरचंद जैन**

कोलारस—विगत दिनों यहाँ पंडित केशरीचंदजी 'धवल' के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। दिनांक १-११-७७ से ७-११-७७ तक रत्नकरंड श्रावकाचार तथा समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार पर उनके सारगर्भित प्रवचन हुए। **—किशनमल जैन**

केसली—अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर सिद्धचक्रमंडल विधान तथा शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठावाले पधारे। आपके प्रवचनों तथा कक्षाओं से स्थानीय समाज ने अच्छा धर्मलाभ लिया। शिक्षण शिविर में छहढाला, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका, समयसार तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर कक्षाएँ आयोजित की गयीं। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। **—राजेशकुमार सिंघई**

सिवनी—विगत दिनों पंडित धन्नालालजी ग्वालियर के तत्त्वावधान में श्री सिद्धचक्र मंडल विधान महोत्सव सानंद संपन्न हुआ। पंडितजी की अनेकांतमयी, वीतरागतापोषक, आकर्षणपूर्ण वाणी से समस्त तत्त्वप्रेमी समाज ने लाभ लिया। नगर में बैंड-बाजों के साथ विशाल घटयात्रा जुलूस भी निकाला गया। छिंदवाड़ा नवयुवक भजन मंडली ने अपने आध्यात्मिक भजनों द्वारा 'ध्रुवधाम निज शुद्धात्मा' की धुन लगाकर समारोह की विशेष शोभा

बढ़ाई। इस अवसर पर सत्साहित्य के प्रचारार्थ विक्रयकेंद्र खोला गया एवं भ्रमनिवारक साहित्य मुफ्त बाँटा गया। अंत में पंडितजी को अभिनंदन-पत्र भेंटकर भावभीनी विदाई दी गयी। —उत्तमचंद जैन, व्याख्याता

शहपुरा-भिटौंनी—पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले पधारे। १ दिसम्बर से ८ दिसम्बर ७७ तक प्रतिदिन तीनों समय आपके मार्मिक प्रवचनों एवं कक्षाओं का आयोजन किया गया। स्थानीय समाज ने सभी कार्यक्रमों में बड़े उत्साह से भाग लेकर तत्त्व लाभ लिया। — डॉ० रतनचंद जैन

भावनगर—सोनगढ़ से लौटते हुए डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल दिनांक २७-१२-७७ को एक समय के लिये यहाँ पधारे। श्री दिगम्बर जैन मंदिर में उनका मार्मिक प्रवचन मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार पर हुआ।

अहमदाबाद—डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल सोनगढ़ से लौटते हुए दिनांक २८-१२-७७ को एक दिन के लिये रुके। श्री दिगम्बर जैन मंदिर खाड़िया में मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके दो मार्मिक प्रवचन हुए।

श्री रावजीभाई जीवराज शहा अधिष्ठाता बने

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के अधिष्ठाता पद का कार्यभार श्री रावजीभाई जीवराज शहा ने दिनांक २० दिसम्बर १९७७ को एक सादा समारोह में ग्रहण किया। इस अवसर पर श्री बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में महाविद्यालय के छात्रों द्वारा श्री रावजीभाई का भाव-भीना स्वागत किया गया। श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के महामंत्री श्री धन्यकुमारजी बेलोकर ने श्री रावजीभाई का संक्षिप्त परिचय देते हुए सभी छात्रों को उनके अनुभव से लाभ उठाने की प्रेरणा दी। अंत में श्री बाबूभाई मेहता, श्री नेमीचंदजी पाटनी, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा पंडित ज्ञानचंदजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए सभी छात्रों की सफलता की कामना की। — अखिल बंसल

आवश्यकता है एक ऐसे धर्म अध्यापक की, जो बालकों को वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की पाठ्यपुस्तकें पढ़ा सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार। — हरिश्चंद्र जैन, एडवोकेट
मंत्री, श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला, बारां (राज०)

नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

हमारे निरीक्षक पंडित गोविन्दप्रसादजी की प्रेरणा से ग्राम सहराई (मुंगावली) जिला गुना (म.प्र.) तथा सोंरई (ललितपुर-उ.प्र.) में नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना हुई। पाठशालाओं के निरीक्षण के दौरान पंडितजी द्वारा ऐसे-ऐसे गाँवों में पाठशालाएँ खुली हैं जहाँ कि तत्त्वप्रचार का योग बनने की कल्पना भी न थी।

— मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति

पूज्य कानजीस्वामी पर बोलती फिल्म

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की दिनचर्या पर एक घंटे की बोलती फिल्म का निर्माण प्रारंभ हो गया है। इस बोलती फिल्म में पूज्य गुरुदेव की दिनचर्या के अतिरिक्त उनके जन्म-स्थान उमराला तथा सोनगढ़ के विभिन्न दृश्य फिल्माये गये हैं। इसके साथ ही उनके प्रवचन, रात्रिचर्चा तथा डॉ० हुकमचंदजी द्वारा लिये गये इंटरव्यू के दृश्य भी फिल्म में शामिल हैं। फिल्म १-२ माह पश्चात् प्रदर्शित की जावेगी। जो बंधु इसका प्रदर्शन अपने नगर या मेले के अवसर पर कराना चाहें वे सोनगढ़ ट्रस्ट तथा पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर से संपर्क करें।

दिगम्बर जैन महासमिति की आवश्यक बैठक

दिगम्बर जैन महासमिति की आवश्यक बैठक १८ दिसम्बर १९७७ को दिल्ली में स्व० साहू शांतिप्रसादजी के निवासस्थान पर बुलाई गयी। बैठक में स्व० साहू शांतिप्रसादजी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। साहूजी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये इस संस्था के संस्थापक के रूप में साहू शांतिप्रसादजी का नाम सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। उनके रिक्त स्थान पर अध्यक्ष श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी चुने गये।

दिगम्बर जैन समाज में एकता, सौहार्द, समन्वय व समाजोत्थान उपयोगी महत्वपूर्ण कार्य को सबल बनाने के लिये गठित दिगम्बर जैन महासमिति की बैठक में इस बात पर सभी उपस्थित महानुभावों ने बल दिया कि दिगम्बर जैन महासमिति का प्रमुख उद्देश्य दिगम्बर जैन समाज में एकता समन्वय व पारस्परिक प्रेम पैदा करना होगा। यह महासमिति किसी प्रकार के विवादास्पद व पक्षपात की भावनाओं को प्रोत्साहन नहीं देगी व इसमें प्रत्येक विचारधारा का समावेश रहेगा। इसका प्रयास समन्वयात्मक रहेगा।

— भगतराम जैन

श्री ब्रह्मचारी पंडित बाबूलालजी द्वारा तत्त्वप्रचार

बरायठा (सागर-म.प्र.) निवासी ब्रह्मचारी पंडित बाबूलालजी वेदीप्रतिष्ठा, सिद्धचक्र पूजा विधानादि धार्मिक अनुष्ठान शुद्ध और सरल विधि से कराते हैं। साथ ही इनके द्वारा पाँच दिवसीय, आठ दिवसीय शिक्षण शिविर लगाये जाते हैं, जिनसे बहुत तत्त्वप्रचार होता है। पिछले तीन-चार महीनों के बीच शाहगढ़, बण्डा, अमरमऊ, सागर, देखलोंन, कटंगी, घौरा, केसली आदि गाँवों में आपके आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन हुआ। जिससे समाज को काफी लाभ मिला। बरायठा में प्रतिदिन दो टाइम आपका प्रवचन चलता है तथा शिक्षण कक्षायें भी चलती हैं। समाज से अनुरोध है कि आपसे भरपूर लाभ लेवें।

—मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४ (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा-कार्यक्रम सन् १९७८

दिन व दिनांक	नाम ग्रंथ
शनिवार ४ फरवरी, १९७८	१. बालबोध पाठमाला भाग १ (बा० प्रथम खंड) मौखिक २. जैन बालपोथी भाग १ (मौखिक) ३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १ (प्र० प्रथम खंड) ४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ ५. छहढाला (पूर्ण) ६. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध ७. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) ८. जैन सिद्धांत प्रवेशिका (बरैयाजी) ९. विशारद द्वितीय खंड (प्रथम वर्ष)

सोमवार, ६ फरवरी, १९७८	१. बालबोध पाठमाला भाग २ (बा० द्वितीय खंड) मौखिक २. जैन बालपोथी भाग २ (मौखिक) ३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग २ (प्र. द्वितीय खंड) ४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ ५. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) ६. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध ७. लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका (सोनगढ़) ८. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) ९. विशारद प्रथम खंड (प्रथम वर्ष) १०. विशारद द्वितीय खंड (द्वितीय वर्ष)
मंगलवार ७ फरवरी, १९७८	१. बालबोध पाठमाला भाग ३ (बा० तृतीय खंड) मौखिक २. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३ (प्र० तृतीय खंड) ३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्ण) ४. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) ५. विशारद प्रथम खंड (द्वितीय वर्ष)

नोट – (१) सुविधानुसार परीक्षा का समय सुबह ९ बजे से ५ बजे तक के बीच में रखा जा सकता है।

(२) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।

(३) यदि किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।

पाठकों के पत्र

पूना (महाराष्ट्र) से सौ० चन्दा रमेश काले लिखती हैं:-

आत्मधर्म पढ़ते समय हमें बहुत ही आनंद मिलता है। हम घर के सब सदस्य और हमारे पड़ोसी आत्मधर्म को बड़े चाव से पढ़ते हैं।

मैगुवां (उ.प्र.) से श्री सनतकुमार जैन, एम.ए. लिखते हैं:-

इस भौतिकवादी संसार में यदि कोई सशक्त प्रेरणाप्रद आध्यात्मिक पत्रिका है तो वह 'आत्मधर्म' ही है। इसे पढ़कर ऐसा लगता है मानो आत्मिक निधि सहज ही प्राप्त हो गयी हो। डॉ० भारिल्ल साहब का व्यक्तित्व इस पत्रिका के संपादन के बाद और अधिक उभरकर आया है।

बम्बई (महाराष्ट्र) से श्री भरतभाई हिम्मतभाई जोबालिया लिखते हैं:-

समस्त दिगम्बर जैन समाज में पूज्य स्वामीजी के निमित्त से आत्मभावना बढ़ती जा रही है। बच्चों में आत्मजागृति हो इसके लिये गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोली जायें। टोडरमल महाविद्यालय एवं अन्य माध्यमों से अच्छे मुमुक्षु तैयार होंगे, ऐसी आशा है।

हैदराबाद (आन्ध्र) से श्री बाबूलालजी पाटौदी लिखते हैं:-

आत्मधर्म बड़ी सजधज से निकालने का श्रेय आपको तथा आपके सहयोगियों को है। अध्यात्म का ऐसा प्रचार वर्तमान में और अधिक वांछनीय हो गया है। अतएव यह पत्र मासिक के स्थान पर पाक्षिक हो तो आत्मार्थियों को अधिक लाभ होगा।

जगलदपुर (म.प्र.) से श्री लक्ष्मीचंदजी जैन लिखते हैं:-

एक साधर्मी भाई से अंक लेकर पढ़ा, सहज सुखानुभूति हुई। उत्तम संयम, आयुकर्मादि लेख अंतस पर उल्लिखित हो गये।

बीना (म.प्र.) से श्री श्रेयांसकुमारजी लिखते हैं:-

आत्मधर्म में 'ज्ञानगोष्ठी' की सामग्री कम से कम पाँच पृष्ठों में देने लगें।

खंडवा (म.प्र.) से श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन लिखते हैं:-

आपके संपादकत्व में आत्मधर्म के सभी स्तम्भ बड़े रोचक बन पड़े हैं। संपादकीय लेख 'उत्तम संयम : एक विश्लेषण' अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं रोचक लगा।

बीकानेर (राजस्थान) से सुप्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचंदजी नाहटा लिखते हैं:-

आत्मधर्म के संपादकीय में दश धर्मों पर विवेचन बहुत अच्छे लगे, पुस्तकरूप में छपने पर अवश्य भेजें।

अवागढ़ (उ.प्र.) से श्री राजेन्द्रकुमारजी देवेन्द्रकुमारजी जैन लिखते हैं:-

आत्मधर्म के सभी अंक बिंदु में सिंधु के समान होते हैं। आपके सफल संपादन में आत्मधर्म उन्नति की ओर अग्रसर हो, ऐसी कामना है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें:-

(१) कुछ सज्जनों के हमारे पास ऐसे पत्र आये हैं जिसमें लिखा है कि हमारा हिन्दी आत्मधर्म बन्द करके मराठी भेजना प्रारंभ कर दें। इस संबंध में निवेदन है कि मराठी आत्मधर्म का कार्यालय बम्बई में है। मराठी आत्मधर्म मंगाने के लिये पृथक् से चंदा बम्बई के पते पर भेजना चाहिये। हिन्दी के बदले मराठी अंक भेजना संभव नहीं है।

(२) आत्मधर्म में प्रकाशनार्थ बहुत से लेख, कवितायें आदि प्राप्त हो रही हैं। आत्मधर्म के सामान्य अंकों में पूज्य कानजीस्वामी द्वारा प्रतिपादित तत्त्वविवेचन एवं संपादकीय के अतिरिक्त अन्य लेखादि छापने की परंपरा नहीं है, अत: क्षमा करें।

(३) भेंट में दी जानेवाली पुस्तक होली तक प्रकाशित हो सकेगी। पुस्तक प्रकाशित होते ही सभी ग्राहकों को सोनगढ़ से भेजी जावेगी। जल्दी के लिये पत्र व्यवहार न करें।

आवश्यक सूचनाएँ

(१) श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर से संबंधित सभी परीक्षा केन्द्रों को रोल नंबर, परीक्षा का कार्यक्रम आदि आवश्यक परीक्षोपयोगी सामग्री बुक-पोस्ट द्वारा भेजी जा चुकी है। प्रश्न-पत्र यथासमय भेजे जायेंगे।

परीक्षायें पूर्व सूचनानुसार दिनांक ४, ६ व ७ फरवरी, १९७८ को होंगी। **— मंत्री**

(२) हमारी विगत सूचना के अनुसार जिन बंधुओं का पोस्टेज प्राप्त हुआ था, उन सभी को बिना मूल्य 'सत्य की खोज' व 'अर्चना' भेज दी गयी है, कृपया अब कोई भी सज्जन बिना मूल्य मंगाने का कष्ट न करें।

'सत्य की खोज' की प्रथम आवृत्ति समाप्त हो चुकी है, द्वितीय आवृत्ति २६ जनवरी तक छप रही है। जिन सज्जनों के आर्डर हैं, उन्हें जनवरी के अंत तक भेज दी जावेगी।

यदि कोई सज्जन विवाह आदि के शुभ अवसरों पर 'सत्य की खोज' पुस्तक भेंट में देना चाहें तो उन्हें २५ प्रतिशत कमीशन देने की सुविधा है। इच्छित बंधु संपक करें। **— प्रबंधक**

प्रवचन-प्रसार योजना

पूज्य कानजीस्वामी के दोनों समयों के प्रवचनों का नियमित रूप से टेप हो रहा है। वर्तमान में श्री प्रवचनसार गाथा १७२ पर (अलिंगग्रहण के बीस बोल पर) पूज्य स्वामीजी के १४ प्रवचन गुजराती में हुए हैं तथा ४७ नयों पर भी गुजराती में प्रवचन हो रहे हैं।

उक्त प्रवचनों के टेप की रीलें हांगकांग निवासी श्री मधुभाई चिमनलाल जवेरी की ओर से नि:शुल्क उतारने की व्यवस्था मात्र जनवरी १९७८ के लिये है। इच्छुक सज्जन संपक करें।

— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भगवान पार्श्वनाथ

उक्त चित्र श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर, सोनगढ़ के मूल मंदिर में विराजमान भगवान पार्श्वनाथ की फणवाली मूर्ति का है। उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा वी० नि० सं० २४६७ फाल्गुन शुक्ला २ को श्री कानजी स्वामी के उपदेश से राजकोट निवासी श्री रणछोड़दास धारशीभाई ने करायी थी जैसा कि उक्त मूर्ति की प्रशस्ति से स्पष्ट है।

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

मोक्षमार्गप्रकाशक		प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४